बौद्ध धर्म क्या कहता है ?



श्रीकृष्ण दत्त भट्ट

धर्म क्या कहता है ? : ६

बौद्ध धर्म क्या कहता है ?

•

श्रीकृष्णदत्त भट्ट

•

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक : मंत्री, सर्व-सेवा-संघ,
राजघाट, वाराणसी

संस्करण : प्रथम : दिसम्बर, १९६३ : ३,०००
द्वितीय : फरवरी, १९६५ : ५,०००

कुल प्रतियाँ : ८,०००

मुद्रक : नरेन्द्र भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
गायघाट, वाराणसी

मूल्य : ६० पैसे

Title : BAUDDHA DHARMA
KYA KAHATA HAI ?
Author : Shrikrishna Datta Bhatta
Subject : Religion
Publisher : Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi
Edition : Second
Copies : 5,000; February, '65
Total Copies : 8,000
Price : 60 Paise

प्रकाशकीय

करुणाके साक्षात् अवतार थे भगवान बुद्ध । प्राणी-मात्रके प्रति अनन्य करुणा भरी हुई थी उनके हृदयमें । उनका जीवन और उनकी वाणी युग-युगतक लोगोंको करुणाका पवित्र सन्देश देती रहेगी ।

हमारी 'धर्म क्या कहता है ?' पुस्तक-मालाकी यह छठी पुस्तक है । इस मालामें इसके अलावा वैदिक, जैन, पारसी, यहूदी, ताओ, कनफ्यूश, ईसाई, इस्लाम तथा सिख धर्मपर भी पुस्तकें निकली हैं ।

बौद्ध धर्मके ही नहीं, सभी धर्मोंके मूलमें सत्य, प्रेम और करुणाकी त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है । हम मानते हैं कि इसमें जो कोई निमज्जन करेगा, उसका कल्याण हुए बिना न रहेगा ।

•

अनुक्रम

●

: १ :



"सिद्धार्थ, यह शिकार मेरा है, मुझे दे दो !"

"भाई, मैं इसे तुम्हें नहीं दूँगा।"

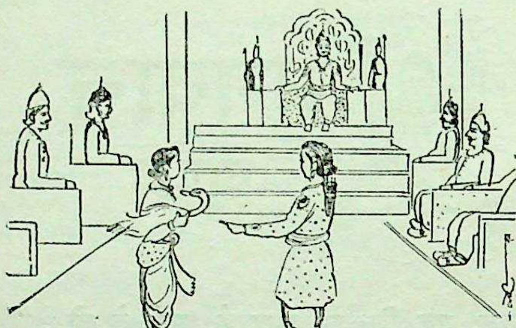
"क्यों ?"

"तुम इस हंसको मार रहे थे भाई, मैंने इसे बचाया है। अब तुम्हीं बताओ कि इसपर मारनेवालेका हक होना चाहिए कि बचानेवालेका ?"

देवदत्त था राजकुमार सिद्धार्थका चचेरा भाई। उसने सिद्धार्थके पिता राजा शुद्धोदनसे शिकायत की। शुद्धोदनने सिद्धार्थसे कहा : "बेटा, यह हंस तुम देवदत्तको क्यों नहीं दे देते ? आखिर तीर तो उसीने न चलाया था ?"

"सो तो ठीक है पिताजी ! पर यह तो बताइये कि आकाशमें उड़नेवाले इस बेकसूर हंसपर तीर चलानेका ही उसे क्या अधिकार था ? बेचारे हंसने देवदत्तका कुछ बिगाड़ा तो था नहीं, फिर उसने इसपर तीर क्यों चलाया ? क्यों उसने इसे घायल किया ?

मुझसे इस दुःखी प्राणीका दुःख नहीं देखा गया। इसलिए मैंने तीर निकालकर इसकी सेवा की। इसके प्राण बचाये। हक तो इसपर मेरा ही होना चाहिए।"



राजा शुद्धोदनको सिद्धार्थकी बात जँची। बोले : "ठीक है तुम्हारा कहना। मारनेवालेसे बचानेवाला ही बड़ा है। इसपर तुम्हारा ही हक है।"

देवदत्तने अपनी भल मानी। सिद्धार्थने हंसको छोड़ दिया। वह आकाशमें उड़ गया।

ऐसा था कपिलवस्तुका राजकुमार सिद्धार्थ। बचपनसे ही उसके हृदयमें हर प्राणीके लिए करुणा भरी थी।

जन्म

कपिलवस्तु और देवदहके बीच नेपालकी तराईमें नौतनवा स्टेशनसे ८ मील पश्चिम रुक्मिनदेई है। कोई तीन हजार साल पहले वहाँ एक वन था, जिसका नाम था लुम्बिनी। ईसासे ५६३ साल पहले जब कपिलवस्तुकी महारानी महामाया देवी अपने नैहर देवदह जा रही थीं, तो उस लुम्बिनी-वनमें ही

गौतमका जन्म हुआ। नाम रखा गया सिद्धार्थ। जन्मके सात दिन बाद ही माँका देहान्त हो गया। सिद्धार्थकी मौसी गोतमीने उनका लालन-पालन किया।

बचपन

बचपनसे ही सिद्धार्थमें करुणा भरी थी। उनसे किसी भी प्राणीका दुःख देखा नहीं जाता था।

गुरु विश्वामित्रके पास सिद्धार्थने वेद और उपनिषद् तो पढ़े ही, राज-काज और युद्ध-विद्याकी भी शिक्षा ली। कुश्ती लड़नेमें, घुड़दौड़में, तीर चलानेमें, रथ हाँकनेमें कोई उनकी बराबरी न कर पाता। परन्तु घुड़दौड़में घोड़े दौड़ते और उनके मुँहसे झाग निकलने लगता, तो वे उन्हें थका जानकर वहीं रोक देते और जीती हुई बाजी हार जाते। खेलमें भी किसीको हराना और उसका दुःखी होना उनसे न देखा जाता। उसके बजाय खुद हार जाना उन्हें पसन्द था।

विवाह

सिद्धार्थ शाक्य वंशमें पैदा हुए थे। सोलह वर्षकी उम्रमें दण्डपाणि शाक्यकी कन्या यशोधराके साथ उनका विवाह कर दिया गया।

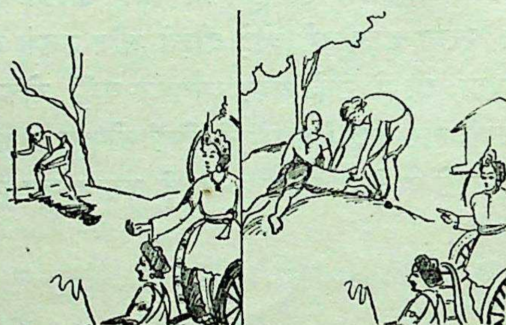
राजा शुद्धोदनने सिद्धार्थके लिए भोग-विलासका भरपूर प्रबन्ध कर दिया। तीन ऋतुओंके लायक तीन सुन्दर महल बनवा दिये। वहाँपर नाच-गान और मनोरंजनकी सारी सामग्री जुटा दी गयी। दास-दासी उनकी सेवामें रख दिये गये।

पर ये सब चीजें सिद्धार्थको संसारमें बाँधकर नहीं रख सकीं। विषयोंमें उनका मन फँसा न रह सका।

बूढ़े आदमीका दर्शन

वसन्त ऋतुकी बात है। एक दिन कुमारकी इच्छा हुई कि चलूँ, बगीचेकी सैर कर आऊँ।

रथ बढ़ने लगा। तभी उन्हें सड़कपर एक बूढ़ा आदमी दिखाई पड़ा। बुढ़ापेसे वह जर्जरित था। दाँत उसके टूट गये थे। बाल पक गये थे। शरीर टेढ़ा पड़ गया था। हाथमें लाठी पकड़े धीरे-धीरे काँपता हुआ वह सड़कपर चल रहा था।



कुमारने सारथीसे पूछा : "सौम्य, यह कौन पुरुष है ? इसके बाल भी औरोंके समान नहीं हैं !"

"कुमार ! यह भी एक दिन सुन्दर नौजवान था। इसके भी बाल काले थे। इसका भी शरीर स्वस्थ था। पर अब तो जराने, बुढ़ापेने इसे दबा रखा है !"

"छन्न ! यह जरा क्या सभीको दबाती है, या केवल इसीको उसने दबाया है ?"

"कुमार, जरा सभीको दबाती है। एक दिन सभीकी जवानी चली जाती है!"

"सौम्य, क्या किसी दिन मेरा भी यही हाल होगा?"

"अवश्य, कुमार!"

"धिक्कार है उस जन्मपर, जिसने मनुष्यका ऐसा रूप बना दिया है। धिक्कार है यहाँ जन्म लेनेवालेको!"

कुमारका मन खिन्न हो गया। वे जल्दी ही लौट पड़े। राजाको पता लगा, तो उन्होंने कुमारके लिए और अधिक मनोरंजनके सामान जुटा दिये। महलके चारों ओर पहरा बैठा दिया कि फिर कभी ऐसा कोई खराब दृश्य उनकी आँखोंके आगे न पड़े।

रोगीका दर्शन

दूसरी बार कुमार जब बगीचेकी सैरको निकले, तो उनकी आँखोंके आगे एक रोगी आ गया। उसकी साँस तेजीसे चल रही थी। कंधे ढीले पड़ गये थे। बाँहें सूख गयी थीं। पेट फूल गया था। चेहरा पीला पड़ गया था। दूसरेके सहारे वह बड़ी मुश्किलसे चल पा रहा था।

"यह कौन है सौम्य?" कुमारने सारथीसे पूछा।

"यह बीमार है कुमार! इसे ज्वर आता है।"

"यह बीमारी कैसे होती है, सौम्य?"

"बीमारी होती है धातुके प्रकोपसे।"

"क्या मेरा शरीर भी ऐसा ही होगा सौम्य?"

"क्यों नहीं कुमार? 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्।' शरीर है, तो रोग होगा ही!"

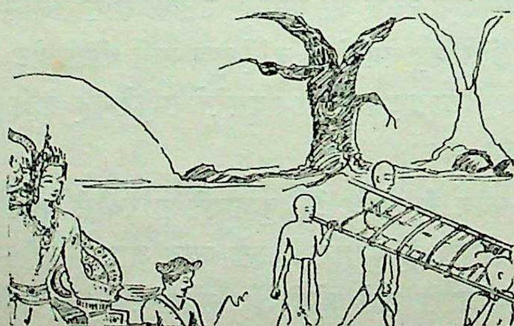
कुमारको फिर एक धक्का लगा । बोला : "यदि स्वास्थ्य सपना है, तो कौन भोग कर सकता है शरीरके सुख और आनन्दका ? लौटा ले चलो रथ सौम्य !"

कुमार फिर दुःखी होकर महलको लौट आये । पिताने पहरा और कड़ा कर दिया ।

मुर्देका दर्शन

फिर एक दिन कुमार बगीचेकी सैरको निकले । अबकी बार एक अरथी उनकी आँखोंके सामनेसे गुजरी । चार आदमी उसे उठाये लिये जा रहे थे । पीछे-पीछे बहुत-से लोग थे । कोई रो रहा था, कोई छाती पीट रहा था, कोई अपने बाल नोच रहा था ।

"यह सजा-सजाया, बँधा-बँधाया, कौन आदमी लेटा जा रहा है बाँसके इस खटोलेपर ?"



"यह आदमी लेटा नहीं है कुमार ! यह मर गया है । यह मृतक है, मुर्दा है । अपने सगे-सम्बन्धियोंसे यह दूर चला गया । वहाँसे अब कभी नहीं लौटेगा । इसमें अब जान नहीं रह गयी ।

घरवाले नहीं चाहते, फिर भी वे इसे सदाके लिए छोड़ने जा रहे हैं कुमार !"

"क्या किसी दिन मेरा भी यही हाल होगा, सौम्य ?"

"हाँ, कुमार ! जो पैदा होता है, वह एक दिन मरता ही है।"

"धिक्कार है जवानीको, जो जीवनको सोख लेती है। धिक्कार है स्वास्थ्यको, जो शरीरको नष्ट कर देता है। धिक्कार है जीवनको, जो इतनी जल्दी अपना अध्याय पूरा कर देता है। क्या बुढ़ापा, बीमारी और मौत सदा इसी तरह होती रहेंगी सौम्य ?"

"हाँ, कुमार !"

कुमारको गहरा धक्का लगा। वे उदास होकर महलको लौट पड़े।

राजाने कुमारकी विरक्तिका हाल सुनकर उनके चारों ओर बहुत-सी सुन्दरियाँ तैनात कर दीं। वे कुमारको मन लुभानेकी तरह-तरहसे कोशिश करने लगीं, पर उनपर कोई असर नहीं हुआ। अपने साथी उदायीसे उन्होंने कहा : "स्त्रियोंका यह रूप कभी टिकनेवाला है क्या ? क्या रखा है इसमें ?"

संन्यासीका दर्शन

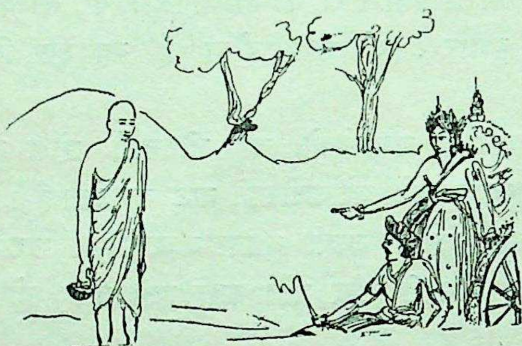
चौथी बार कुमार बगीचेकी सैरको निकले, तो उन्हें एक संन्यासी दिखाई पड़ा।

"कौन है यह, सौम्य ?"

"यह संन्यासी है, कुमार।"

"यह शान्त है, गम्भीर है। इसका मस्तक मुँड़ा है। हाथमें

भिक्षा-पात्र लिये है। कपड़े इसके रँगे हुए हैं। क्या करता है यह सौम्य ?"



"कुमार ! इसने संसारका त्याग कर दिया है। तृष्णाका त्याग कर दिया है। कामनाओंका त्याग कर दिया है। द्वेषका त्याग कर दिया है। यह भीख माँगकर खाता है। संसारसे इसे कुछ लेना-देना नहीं।"

कुमारको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका चेहरा खिल उठा। बगीचेमें पहुँचे, तो हरकारेने आकर कहा : "भगवन्, पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है।"

"राहु पैदा हुआ !" उनके मुखसे निकला। उन्होंने सोचा कि एक बन्धन और बढ़ा।

पिताने सुना, तो पोतेका नाम ही रख दिया 'राहुल' !

पितासे घर छोड़नेकी अनुमति

एक ओर महलमें पुत्रके जन्मका उत्सव मनाया जा रहा था, दूसरी ओर सिद्धार्थ अपने पितासे कह रहे थे : "पिताजी, संसारमें चारों ओर दुःख ही दुःख भरा है। किसीको बुढ़ापा

सता रहा है, किसीको रोग। किसीकी मृत्यु हो रही है, कोई किसी अन्य दुःखमें पड़ा है। सभी प्राणियोंका जीवन दुःखमय है। इन महादुःखोंसे मुक्त होनेके लिए मैं प्रव्रज्या लूँगा।"

पिता तो बेटेके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर अवाक् रह गये। बोले : "बेटा, वैराग्यकी इन बातोंमें कुछ नहीं रखा है। छोड़ो इन्हें। गृहस्थ-धर्मका पालन करो और संसारका सुख भोगो।"

"यदि बुढ़ापा मेरी जवानीको न छीने, रोग मेरे शरीरको पीड़ित न करे, मृत्यु मेरा प्राण न ले, विपत्तियाँ मेरी सम्पत्तियोंको नष्ट न करें, तो मैं घरपर रहनेको तैयार हूँ पिताजी !"

शुद्धोदनके पास क्या जवाब था इन बातोंका ? वे बोले : "बेटा, असम्भव बातोंके पीछे पड़ना ठीक नहीं। इन सब बातोंका सोचना बन्द करो और जीवनका जो सुख प्राप्त है, उसे अच्छी तरह भोगो।"

सिद्धार्थ बोले : "पिताजी ! मृत्यु एक दिन आकर हमें आपसे दूर कर ही देगी। यह घर एक दिन छूट ही जायगा। फिर क्या लाभ है इसीमें पड़े रहनेमें ? मुझे तो घर छोड़नेके अलावा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं दीखता।"

शुद्धोदनने कुमारका पहरा और कड़ा कर दिया। भोग-विलासके साधन और बढ़ा दिये।

महाभिनिष्क्रमण

सिद्धार्थ सजे-सजाये पलंगपर लेटे ! नृत्य, संगीत और वाद्यसे उनका मनोरंजन करनेके लिए अनेक सुन्दरियाँ उनके कमरेमें आ गयीं। वे तरह-तरहसे अपनी कलाएँ दिखाकर कुमारको लुभाने लगीं। पर कुमारको कुछ अच्छा नहीं लगा।

वे जल्दी ही सो गये। उन्हें सोते देख वे सुन्दरियाँ भी ऊँघने लगीं और थोड़ी देरमें सो गयीं।

आधी रातको सिद्धार्थकी नींद खुली। देखा, चारों ओर स्त्रियाँ बिखरी पड़ी हैं। किसीके मुखसे फेन निकल रहा है, किसीके मुँहसे लार। कोई दाँत कटकटा रही है, कोई बर्रा रही है। किसीका कोई अंग खुला है, किसीका कोई। किसीके बाल बिखरे हैं, कोई जोर-जोरसे खुर्राटे ले रही है। किसीका काजल फैल गया है, किसीका सिन्दूर।

यही है कामिनियोंका सौन्दर्य ! इसीपर लोग मरते हैं ! छिः छिः !

सिद्धार्थको लगा, जैसे वे किसी श्मशानमें हों, जहाँ चारों ओर गन्दी-घिनौनी लाशें पड़ी हों !

सिद्धार्थका वैराग्य तीव्र हो गया।

"मैं आज ही महाभिनिष्क्रमण करूँगा। आज ही मैं घर छोड़ दूँगा।"––ऐसा सोचकर कुमार पलंगसे उतरकर दरवाजेपर आये। आवाज दी : "कौन है यहाँ ?"

"आर्यपुत्र ! मैं हूँ छन्दक।"

"मैं महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूँ। घोड़ा तैयार करो।"

"अच्छा देव !"

छन्दक घोड़ा ठीक करने निकला। सिद्धार्थ यशोधराके कमरेकी ओर बढ़े। सोचा, चलनेके पहले बेटेका मुँह तो देख लूँ !

सिद्धार्थने धीरेसे किवाड़ खोले। कमरा खुशबूसे गमक रहा था। सुगन्धित तेलके दीपक जल रहे थे। यशोधरा फूलोंसे सजी शैयापर सो रही थी। राहुलके मस्तकपर उसका हाथ था।

'राहुलको उठाऊँगा, तो शायद यशोधरा जाग जाय और मेरे गृह-त्यागमें बाधा पड़ जाय'--ऐसा सोचकर सिद्धार्थ भीतर न जाकर ड्योढ़ीसे ही लौट पड़े।

महलसे उतरकर सिद्धार्थ घोड़ेपर सवार हुए। रातोरात वे ३० योजन दूर निकल गये। वे गोरखपुरके पास अनोमा नदीके तटपर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने राजसी वस्त्र और आभूषण उतारकर, तलवारसे अपना जूड़ा काटकर संन्यास ले लिया।

राजमहल छोड़ते समय सिद्धार्थकी आयु थी २९ सालकी।

तपस्या

सुन्दरी पत्नी यशोधरा, दूधमुँहे राहुल और कपिलवस्तु जैसे राज्यका मोह छोड़कर सिद्धार्थ तपस्याके लिए चल पड़े।

वे राजगृह पहुँचे। वहाँ उन्होंने भोजनके लिए भिक्षा माँगी। पहला कौर मुँहमें देते हुए उन्हें कै होने लगी। ऐसा भोजन उन्होंने पहले कभी नहीं खाया था। पर 'अब तो यही खाना है'--ऐसा सोचकर उन्होंने जीको कड़ा किया।

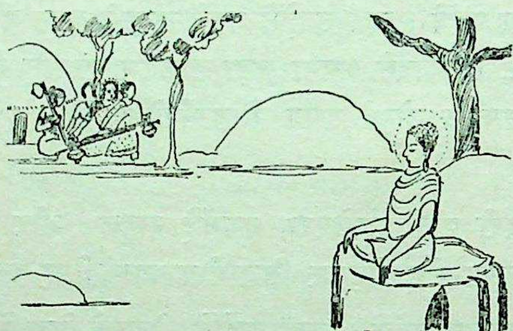
सिद्धार्थ घूमते-घूमते आलार कालाम और उद्दक रामपुत्रके पास पहुँचे। उनसे उन्होंने योग-साधना सीखी। समाधि लगाना सीखा। पर उससे उन्हें संतोष नहीं हुआ। वे उरुवेला पहुँचे और वहाँपर तरह-तरहसे तपस्या करने लगे।

सिद्धार्थने पहले तो केवल तिल-चावल खाकर तपस्या शुरू की, बादमें कोई भी आहार लेना बन्द कर दिया। शरीर सूखकर काँटा हो गया।

छह साल बीत गये तपस्या करते हुए। सिद्धार्थकी तपस्या सफल नहीं हुई!

मध्यम मार्ग

एक दिन कुछ स्त्रियाँ किसी नगरसे लौटती हुई वहाँसे निकलीं, जहाँ सिद्धार्थ तपस्या कर रहे थे। उनका एक गीत सिद्धार्थके कानमें पड़ा :



"वीणाके तारोंको ढीला मत छोड़ दो। ढीला छोड़ देनेसे उनसे सुरीला स्वर नहीं निकलेगा। पर तारोंको इतना कसो भी मत कि वे टूट जायँ।......"

बात सिद्धार्थको जँच गयी। वे मान गये कि नियमित आहार-विहारसे ही योग सिद्ध होता है। अति किसी बातकी अच्छी नहीं। मध्यम मार्ग ही ठीक होता है।

सुजाताकी खीर

वैशाखी पूर्णिमाकी बात है। सुजाता नामकी स्त्रीको पुत्र हुआ। उसने बेटेके लिए एक वटवृक्षकी मनौती मानी थी। वह मनौती पूरी करनेके लिए सोनेके थालमें गायके दूधकी खीर

भरकर पहुँची। सिद्धार्थ वहाँ बैठे ध्यान कर रहे थे। उसे लगा कि वृक्षदेवता ही मानो पूजा लेनेके लिए शरीर धरकर बैठे हैं।



सुजाताने बड़े आदरसे सिद्धार्थको खीर भेट की। कहा : "जैसे मेरी मनोकामना पूरी हुई, उसी तरह आपकी भी हो।"

सिद्धार्थ खीर लेकर पासमें ही बहती निरंजना नदीपर गये। स्नान करके खीर खा ली और थाल फेंक दिया नदीमें।

बोधकी प्राप्ति

उसी रातको ध्यान लगानेपर उनकी साधना सफल हुई। उन्हें सच्चा बोध हुआ। तभीसे वे 'बुद्ध' कहलाये।

जिस वृक्षके नीचे उन्हें बोध हुआ, उसका नाम है 'बोधिवृक्ष'। जिस स्थानकी यह घटना है, वह है 'बोधगया'। ईसाके ५२८ साल पहलेकी यह घटना है, जब सिद्धार्थ ३५ सालके युवक थे।

बुद्ध भगवान् ४ सप्ताहतक वहीं बोधवृक्षके नीचे रहे। वे धर्मके स्वरूपका चिन्तन करते रहे। इसके बाद वे धर्मका उपदेश करनेके लिए निकल पड़े।

धर्म-चक्र-प्रवर्तन

उसी साल आषाढ़की पूर्णिमाको भगवान् बुद्ध काशीके पास मृगदावमें पहुँचे। आजके सारनाथमें। वहींपर उन्होंने सबसे पहला धर्मोपदेश दिया।

भगवान् बुद्धने मध्यम मार्ग अपनानेके लिए लोगोंसे कहा। दुःख, उसके कारण और निवारणके लिए अष्टांगिक मार्ग सुझाया। अहिंसापर बड़ा जोर दिया। यज्ञ और पशु-बलिकी निन्दा की।

धर्म-प्रचार

तबसे लेकर ८० वर्षकी उम्रतक भगवान् बुद्धने अपने धर्मका सीधी सरल लोकभाषामें--पालीमें प्रचार किया। उनकी सच्ची सीधी बातें जनमानसको स्पर्श करती थीं। लोग आ-आकर उनसे दीक्षा लेने लगे।

बौद्ध धर्म सबके लिए खुला था। उसमें हर आदमीका स्वागत था। ब्राह्मण हो या शूद्र, पापी हो या चाण्डाल, स्त्री हो या पुरुष, वेश्या हो या सती, गृहस्थ हो या ब्रह्मचारी, सबके लिए उनका दरवाजा खुला था। जात-पाँत, ऊँच-नीचका कोई भेदभाव नहीं था उनके यहाँ।

संघकी स्थापना

भिक्षुओंकी संख्या बढ़ने लगी। बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी उनके शिष्य बनने लगे। शुद्धोदन और राहुलने भी बौद्ध धर्मकी दीक्षा ली। जब भिक्षुओंकी संख्या बढ़ने लगी तो बौद्ध संघकी स्थापना की गयी।

बादमें लोगोंके आग्रहपर बुद्ध भगवान्ने स्त्रियोंको भी संघमें

स्थान देनेके लिए अनुमति दे दी, यद्यपि इसे उन्होंने विशेष अच्छा नहीं माना।

विदेशोंमें प्रचार

भगवान् बुद्धने 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय', लोक-कल्याणके लिए अपने धर्मका देश-विदेशमें प्रचार करनेके लिए भिक्षुओंको इधर-उधर भेजा। आज भी भारतसे अधिक विदेशोंमें बौद्ध धर्मका प्रचार है। चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, बर्मा, थाईलैंड, हिन्दचीन, श्रीलंका आदिमें बौद्ध धर्म आज भी जीवित धर्म है और करोड़ों प्राणियोंका कल्याण कर रहा है।

निर्वाण

भगवान् बुद्धने सत्य और अहिंसा, प्रेम और करुणा, सेवा और त्यागसे परिपूर्ण जीवन बिताया।

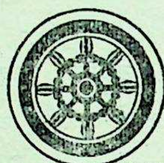
वैशाखी पूर्णिमाको उनका जन्म हुआ था, उसी दिन उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ और उसी दिन निर्वाण। ईसासे ४८३ साल पहले भगवान् बुद्धने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया।

भगवान् बुद्धका आदर्श जीवन युग-युगतक लोगोंको सत्य, प्रेम और करुणाकी प्रेरणा देता रहेगा।

काश, हम उनके जीवनसे, उनके उपदेशसे कुछ सीख पायें !

●

: २ :



बौद्धधर्म

यो च बुद्धं च धम्मं च संघं च सरणं गतो ।
चत्तारि अरिय सच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति ।।
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं ।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ।।
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।
एतं सरणमागम्म सव्वदुक्खा पमुच्चति ।।

जो आदमी बुद्धकी, धर्मकी और संघकी शरणमें आता है, वह सम्यक् ज्ञानसे चार आर्य सत्योंको जान लेता है । आर्य सत्य हैं—दुःख, दुःखका हेतु, दुःखसे मुक्ति और दुःखसे मुक्तिकी ओर ले जानेवाला अष्टांगिक मार्ग । इसी मार्गकी शरण लेनेसे कल्याण होता है । यही शरण उत्तम है । इसी शरणमें आकर मनुष्य सभी दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है ।

मध्यम मार्ग

दो प्रकारकी अतियाँ होती हैं। उनका सेवन नहीं करना चाहिए ।

एक अति है, भोग-विलासमें, काम-सुखमें ऊपरसे नीचेतक डूब जाना । गिरे हुए, भूले हुए लोग इस अतिमें पड़ते हैं ।

दूसरी अति है, शरीरको अत्यधिक पीड़ा देकर तपस्या करना। अपनेको नाना प्रकारसे पीड़ा पहुँचाना।

इन दोनों अतियोंको छोड़कर तथागतने मध्यम मार्ग खोज निकाला है। वह शांति देनेवाला है, ज्ञान देनेवाला है, निर्वाण देनेवाला है। वही है अष्टांगिक मार्ग।

आर्य सत्य

आर्य सत्य चार हैं : (१) दुःख, (२) दुःख-समुदय, दुःखका कारण, (३) दुःख-निरोध, (४) दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपद्, दुःख-निरोधका मार्ग।

पहला आर्य सत्य है––दुःख। जन्म दुःख है। जरा भी दुःख है। व्याधि भी दुःख है। मरण भी दुःख है। अप्रियोंका संयोग दुःख है। प्रियोंका वियोग भी दुःख है। इच्छा करनेपर किसीका न मिलना भी दुःख है।

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान, ये पाँच उपादान स्कंध ही दुःख हैं। सभी भौतिक अवस्थाओंको एक साथ कहा जाता है––रूप। सभी मानसिक अवस्थाओंको एक साथ कहा जाता है––नाम। नामकी ३ स्थितियाँ हैं : वेदना, संज्ञा और संस्कार। विषयके छूनेसे सुख-दुःख, सौमनस्य या दौर्मनस्यकी अथवा उपेक्षाकी जो अनुभूति होती है, उसका नाम है––वेदना। विषयको वैसा पहचान लेनेका ही नाम है––संज्ञा। वितर्क, विचार, लोभ, द्वेष, करुणा आदि मानसिक वृत्तियोंको एक साथ कहा जाता है––संस्कार। पाप-पुण्य आदि जितने प्रकारके चित्त हैं, सभीको एक साथ कहा जाता है––विज्ञान।

दूसरा आर्य सत्य है---दुःख-समुदय। दुःखका कारण। यह है तृष्णा। फिर जन्म लेनेकी तृष्णा, खुश होनेकी तृष्णा, रागसहित जहाँ-तहाँ प्रसन्न होनेकी तृष्णा। काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा।

तीसरा आर्य सत्य है---दुःख-निरोध। तृष्णाका पूरे तौरसे विराग होना। तृष्णाके जाते रहनेसे दुःख भी जाता रहता है।

चौथा आर्य सत्य है---दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपद्। यह है निर्वाणकी ओर ले जानेवाला मार्ग---अष्टांगिक मार्ग।

अष्टांगिक मार्ग

अष्टांगिक मार्गमें आठ बातें हैं :

१. सम्यक् ज्ञान---आर्य सत्योंका ठीक-ठीक ज्ञान।

२. सम्यक् संकल्प---पक्का निश्चय।

३. सम्यक् वचन---सत्य बोलना।

४. सम्यक् कर्मान्त---हिंसा, द्रोह और दुराचरणसे बचना।

५. सम्यक् आजीव---न्यायपूर्ण जीविका चलाना।

६. सम्यक् व्यायाम--सत्कर्मके लिए सतत उद्योग।

७. सम्यक् स्मृति---लोभ आदि चित्त-संतापसे बचना।

८. सम्यक् समाधि---राग-द्वेषसे रहित चित्तकी एकाग्रता।

यह है अष्टांगिक मार्ग। इन आठ बातोंका पालन करनेसे मनुष्यकी प्रज्ञाका उदय होता है और प्रज्ञाके उदय होनेपर निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

निर्वाण

निर्वाण माने बुझ जाना। तृष्णाका बुझ जाना। वास-

नाओंका शान्त हो जाना। तृष्णासे ही, वासनासे ही दुःख होता है। दुःखोंसे सर्वथा छुटकारेका नाम है--निर्वाण। भगवान् बुद्धने कहा है :

"भिक्षुओ, संसार अनादि है। अविद्या और तृष्णासे संचालित होकर प्राणी भटकते फिरते हैं। उनके आदि-अन्तका पता नहीं चलता। भवचक्रमें पड़ा हुआ प्राणी अनादिकालसे बार-बार जनमता-मरता आया है। संसारमें बार-बार जन्म लेकर प्रियके वियोग और अप्रियके संयोगके कारण रो-रोकर अपार आँसू बहाये हैं। दीर्घकालतक दुःखका, तीव्र दुःखका अनुभव किया है। अब तो सभी संस्कारोंसे निर्वेद प्राप्त करो, वैराग्य प्राप्त करो, मुक्ति प्राप्त करो!"[1]

जिघच्छा परमा रोगा, संखारा परमा दुखा।
एवं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं॥[2]

रोगोंकी जड़ है जिघृक्षा, ग्रहण करनेकी इच्छा, तृष्णा। सारे दुःखोंका मूल है संस्कार। इस तत्त्वको जानकर तृष्णा और संस्कारके नाशसे ही मनुष्य निर्वाण पा सकता है।

सचे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा।
एस पत्तो'सि निब्बानं, सारम्भो तेन विज्जति॥[3]

यदि तुम टूटे हुए काँसेकी तरह अपनेको नीरव, निश्चल, या कर्महीन बना लो, तो तुमने निर्वाण पा लिया। कारण, कर्मोंका आरम्भ अब तुममें रहा नहीं और उसके न रहनेसे जन्म-मरणका चक्कर भी छूट गया।

---

१. संजुत्त निकाय १४।२। २. धम्मपद २०३। ३. वही, १३४।

आत्मावलम्बन

अष्टांगिक मार्ग या पारमिता-मार्ग द्वारा निर्वाण प्राप्त करना, तृष्णाओंसे मुक्ति पाना, वासनाओंसे छुटकारा पाना मनुष्यके अपने हाथमें है । जो भी व्यक्ति चाहे, इनका सहारा लेकर निर्वाण प्राप्त कर सकता है ।

भगवान् बुद्धने अपने अन्तिम क्षणोंमें भिक्षुओंको यही आदेश दिया कि भिक्षुओ, तुम आत्मदीप बनकर विहरो । तुम अपनी ही शरण जाओ । किसी दूसरेका सहारा मत ढूँढ़ो । केवल धर्मको अपना दीपक बनाओ । केवल धर्मकी शरण लो :

अत्तदीपा अत्तसरणा अनन्नसरणा ।
धम्मदीपा धम्मसरना होत ॥[1]

तीन प्रकारकी करुणा

बौद्ध धर्ममें तीन प्रकारकी करुणा बतायी है : १. स्वार्थ-मूला करुणा, जैसी माँकी बेटेके प्रति । २. सहैतुकी करुणा, किसीको भी कष्टमें देखकर हृदयका द्रवित होना । ३. अहैतुकी या महाकरुणा, जिसमें न तो मनुष्यका स्वार्थ होता है और न वह पात्र देखता है । सबपर वह अपनी करुणा बिखेरता है ।

हीनयान और महायान

भगवान् बुद्धके निर्वाणके कुछ दिनों बाद बौद्ध धर्मकी कई शाखाएँ हो गयीं । उनमें दो मुख्य हैं : १. हीनयान और २. महायान ।

---

१. महापरिनिब्बाण सुत्त ३३ ।

हीनयान शाखावाले मानते हैं कि शुभ और अशुभ दोनों तरहकी वासनाएँ हेय हैं। वे केवल निवृत्तिपर जोर देते हैं।

महायान शाखावाले अशुभ वासनाएँ छोड़कर शुभ वासनाओंके विकासपर जोर देते हैं। वे मानते हैं कि अशुभ वासनाओंका क्षय होनेपर आदमी बुद्ध बन जाता है। बुद्ध होनेपर भी वे निर्वाण इसलिए नहीं चाहते कि जबतक दूसरे लोग दुःख भोग रहे हैं, तबतक मैं ही सुख क्यों भोगूँ ?

पारमिता मार्ग

हीनयानमें अष्टाङ्गिक मार्गपर जोर है, तो महायानमें पारमिता मार्गपर।

'पारमिता' शब्द बना है, 'परम'से। इसका अर्थ है, सबसे ऊँची अवस्था।

छह पारमिताएँ मुख्य हैं : १. दान-पारमिता, २. शील-पारमिता, ३. शान्ति-पारमिता, ४. वीर्य-पारमिता, ५. ध्यान-पारमिता और ६. प्रज्ञा-पारमिता।

दान-पारमिता : दूसरोंके हितके लिए अपना स्वत्व छोड़नेका नाम है, दान। दान-पारमिता तीन बातोंसे होती है : १. जब दानके पात्रकी कोई सीमा नहीं रहती। प्राणिमात्र दानका पात्र बन जाता है। २. जब देनेकी वस्तुकी कोई सीमा नहीं रहती। मनुष्य अपना सब कुछ दूसरोंके हितमें लगानेको तैयार हो जाता है। ३. जब दानके बदलेमें कुछ भी पानेकी आकांक्षा नहीं रहती।

शील-पारमिता : 'शील' माने सदाचार। अहिंसा, सत्य आदि

नैतिक नियमोंको चोटीपर पहुँचानेका नाम है, शील-पारमिता। हिंसा न शरीरसे होनी चाहिए, न वचनसे, न मनसे। इसी तरह दूसरे नियमोंका पूरा-पूरा पालन होना चाहिए।

शान्ति-पारमिता : 'शान्ति' माने क्षमा, सहनशीलता। चाहे जितना कष्ट आये, धैर्य न छोड़ना, विचलित न होना। शान्ति-पारमिता है, मरने जैसा कष्ट होनेपर भी शान्तिसे उसे झेल लेना।

वीर्य-पारमिता : 'वीर्य' माने उत्साह। अशुभको छोड़कर पूरे उत्साहके साथ आगे बढ़नेका नाम है, वीर्य-पारमिता।

ध्यान-पारमिता : 'ध्यान' माने किसी एक वस्तुमें चित्तको एकाग्र करना। चित्त जब पूरी तरह वशमें हो जाय, तो ध्यान-पारमिता सिद्ध होती है।

प्रज्ञा-पारमिता : 'प्रज्ञा' माने सत्यका साक्षात्कार होना। चित्त जब निर्मल हो जाता है, तब प्रज्ञाकी प्राप्ति होती है। निर्मल चित्तसे ही सत्यके दर्शन होते हैं।

बौद्ध-दीक्षाका मन्त्र है :

बुद्धं सरणं गच्छामि। मैं बुद्धकी शरण लेता हूँ।
धम्मं सरणं गच्छामि। मैं धर्मकी शरण लेता हूँ।
संघं सरणं गच्छामि। मैं संघकी शरण लेता हूँ। ●

: ३ :



भगवान् बुद्धने गौतमके रूपमें तो जन्म लिया था, उसके पहले वे बहुतसे जन्म ले चुके थे। कहते हैं कि उन्होंने इसके पहले तपस्वी, राजा, वृक्ष, देवता, सिंह, हाथी, घोड़ा, गीदड़, भैंसा, कुत्ता, बन्दर, मछली, सुअर आदिके कितने ही जन्म लिये थे।

जातक कथाओंमें ऐसे ५४७ जन्मोंका वर्णन है। बुद्धघोषने कोई दो हजार वर्ष पहले ये कथाएँ लिखी थीं। कहा गया है कि सबसे पहले जन्ममें भगवान् बुद्ध सुमेध तपस्वीके रूपमें पैदा हुए थे और सबसे अन्तमें बेसंतरके रूपमें। तीन बार उन्होंने चाण्डाल-के घरमें जन्म लिया था। एक बार वे जुआरीके रूपमें रहे थे।

इनमेंसे कुछ कथाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। संसारके कोने-कोनेमें इनका प्रचार हुआ है।

दुष्टकुमारकी दुष्टता :१:

काशीमें ब्रह्मदत्त नामका एक राजा था। उसका बेटा था दुष्टकुमार। था भी वह बड़ा दुष्ट। सबको गाली देता, मारता। नौकरतक उससे तंग आ गये थे।

एक शामको दुष्टकुमार नदीमें नहाने गया। उसी समय आसमानमें बादल छा गये। चारों ओर अँधेरा हो गया। कुमारने नौकरोंसे कहा : "चलो, नदीके बीच मुझे ले चलो। मैं वहींपर नहाऊँगा।"

नौकर चिढ़े थे। मौका मिला। उन्होंने दुष्टकुमारको पानीमें डुबा दिया। राजासे जाकर बहाना बना दिया। खोज-खबर की गयी, फिर भी कहींपर उसका पता नहीं चला। कुमार-को नदीमें बहता हुआ एक लक्कड़ मिल गया। वह उसी लक्कड़-पर बैठ गया।

नदी किनारे एक सेठने ४० करोड़ रुपयेका सोना गाड़ रखा था। मरनेपर वह वहीं साँप बनकर आ बैठा। दूसरे सेठने ३० करोड़का सोना गाड़ा था, वह वहाँ चूहा बनकर आ बैठा।

पानी बरसनेसे इन दोनोंके बिल पानीसे भर गये। साँप और चूहा भी उसी लक्कड़पर आकर बैठ गये, जिसपर दुष्ट-कुमार बैठा था। वह जोर-जोरसे रोता जा रहा था। एक तोता भी पेड़से गिरकर नदीमें बहने लगा, वह भी उसी लक्कड़पर आ बैठा।

इस जन्ममें बोधिसत्त्व (बुद्ध भगवान्) नदी किनारे संन्यासी-के रूपमें कुटिया बनाकर रहते थे। राजकुमारका रोना सुनकर

उन्होंने उसे बचानेका निश्चय किया। वे किसी तरह उस लक्कड़को किनारे खींच लाये। फिर उन्होंने चारों प्राणियोंको गरमाकर, सुखाकर खानेको फल-मूल दिये।

चारोंने तपस्वीका उपकार माना। सर्पने कहा : "जरूरत हो, तब आइयेगा। मैं ४० करोड़ रुपया आपको दे सकता हूँ।" चूहेने कहा : "जब चाहें तब मैं ३० करोड़ रुपया दे सकता हूँ।" तोतेने लाल चावल देनेको कहा। दुष्टकुमार बोला : "आइयेगा, मैं आपका खूब स्वागत करूँगा।"

समय पर दुष्टकुमार राजा बना। बोधिसत्त्व उसकी परीक्षाको निकले। पहले वे साँप, चूहे और तोतेके पास गये। वे अपने-अपने वादे की चीजें देने लगे, पर उन्होंने कुछ नहीं लिया।

दुष्टकुमारने बोधिसत्त्वको देखते ही नौकरोंसे कहा : "इस नकली तपस्वीको पकड़कर मारो और सूली दे दो !"

बोधिसत्त्व मार खाते रहे। वे चिल्लाते न थे। सिर्फ इतना कहते : "बुद्धिमानोंने ठीक कहा है कि किन्हीं आदमियोंको पानीसे निकालनेसे अच्छा है लकड़ीको निकालना।"

नागरिकोंने बोधिसत्त्वसे पूछा : "महाराज, आपने हमारे राजाका कोई उपकार किया है ?"

वे बोले : "बाढ़से इसे बचाकर मैंने खुद ही आफत मोल ली है।"

नागरिकोंने सोचा : कैसा दुष्ट है यह राजा। जिसने उसकी जान बचायी, उसीकी जान लेनेपर उतारू है ! ऐसा राजा हमारा क्या भला करेगा ?

नागरिक बिगड़ पड़े। उन्होंने उस कृतघ्नी राजाको मारकर नदीमें फेंक दिया और बोधिसत्त्वका तिलक कर उन्हें गद्दीपर बैठा दिया।

कुछ दिन बाद बोधिसत्त्व सर्प, चूहे और तोतेकी परीक्षा लेनेको निकले। सर्प और चूहेने अपना-अपना सोना बोधिसत्त्वको भेट कर दिया। तोतेने भी कहा : "मैं चावल मँगवाऊँ ?" उन्होंने कहा : "अभी जरूरत नहीं है।"

तीनोंको वे अपने साथ ले आये और प्रेमपूर्वक रहने लगे।

तारीफ इसमें है ! : २ :

बोधिसत्त्व उस जन्ममें भैंसेकी योनिमें थे।

एक बन्दर उन्हें बुरी तरह सताने लगा। वह कभी उनकी पीठपर कूदता, कभी उनकी पूँछ खींचता। कभी उनकी आँखमें उँगली घुसेड़ देता !



पर बोधिसत्त्व सदा शांत बने रहते।

देवताओंने उनसे कहा : "इस दुष्टको दण्ड क्यों नहीं देते ? क्या तुम इससे डरते हो ?"

बोधिसत्त्व बोले : "नहीं देवताओ ! न तो मैं इससे डरता हूँ, न इसने मुझे खरीद रखा है। मैं चाहूँ तो सिरके एक झटकेसे,

सींग मारकर इसका काम तमाम कर दूँ। पर नहीं, मैं इसके अपराध क्षमा करता हूँ। जबर्दस्तका ठेंगा सिरपर होता है। बलवान्का अत्याचार सभी सहते हैं। तारीफ तो इसमें है कि निर्बलका अत्याचार चुपचाप सह लिया जाय !"

ऐसा मित्र किस कामका ? : ३ :

बोधिसत्त्व उस जन्ममें मगधके संख सेठ थे। अस्सी करोड़की सम्पत्ति थी उनके पास।

काशीमें भी एक सेठ था वैसा ही। उसका नाम था पिलिय।

दोनों सेठोंमें बड़ी मित्रता थी।

अचानक संकट आया।

पिलिय सेठका दिवाला निकल गया। वह राजगृह पहुँचा संख सेठके पास।

संख सेठने बड़े प्रेमसे उसका स्वागत किया। अपनी आधी सम्पत्ति उन्होंने उसे बाँट दी और दास-दासी भी बाँट दिये।

एक बार संख सेठपर भी संकट आ गया।

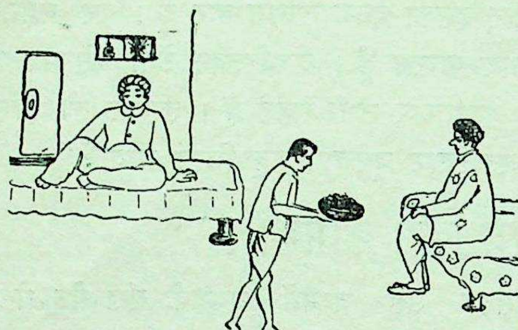
उसने सोचा कि चलूँ, पिलिय सेठके पास काशी !

सेठानीको धर्मशालामें ठहराकर वह पिलिय सेठके यहाँ पहुँचा।

सेठने उसे देखकर अपने नौकरको आज्ञा दी :

"दे दो इसे तुम्बाभर भुस !"

संख सेठसे उसने कहा : "यहाँ तुम्हारे ठहरनेकी जरूरत नहीं। भुस लेकर चलते बनो।"



संख सेठ भुस लेकर सेठानीके पास पहुँचे। भुस देखकर वह रो पड़ी। बोली : "जब उसने धन ही नहीं दिया, तो यह भुस लेनेकी ही कौन-सी जरूरत थी ?"

संख सेठ बोले : "उसने तो मित्रता तोड़ दी, पर मैं क्यों भुस लेनेसे इनकार कर मित्रता तोड़ देता ? मित्रता बनाये रखनेको ही मैंने यह भुस ले लिया।"

सेठानी रोती रही, तभी सेठका एक पुराना नौकर वहाँसे निकला। संख सेठको देखकर वह उनके पैरोंपर गिर गया। बड़े आदरसे वह दोनोंको घर ले गया और वहाँ सम्मानपूर्वक कुछ दिन रखा। फिर उसने राजासे फरियाद की।

संख सेठसे राजाने पूछा : "क्यों सेठ, तुमने क्या सचमुच इस पिलिय सेठको ४० करोड़ रुपया दिया था ?"

"हाँ महाराज, मैंने ४० करोड़ रुपया दिया था, अपने दास, अपने पशु भी आधे-आधे बाँट दिये थे।"

राजाने पिलिय सेठसे पूछा : "क्यों यह बात सही है न ?"

"हाँ, महाराज !"

"इस संख सेठने तेरे साथ ऐसा व्यवहार किया और तूने बदलेमें इसे तुम्बाभर भुस दिया ?"

पिलिय सेठ चुप रह गया।

राजाने मन्त्रियोंसे सलाह करके आज्ञा दी कि पिलियका सारा धन जब्त करके संख सेठको दे दिया जाय।

संख सेठने कहा : "महाराज, मुझे पराया धन नहीं चाहिए। मुझे उतना ही दिला दीजिये, जितना मैंने दिया था।"

राजाने संख सेठका ४० करोड़ रुपया उसे दिलवा दिया। उसे लेकर संख सेठ राजगृह लौट गया और दान-पुण्य करते हुए जीवन बिताने लगा।

होश खोना हो तो पियो ! :४:

वल्कल वस्त्र और मृगचर्म पहने हुए एक जटाधारी ब्राह्मण राजा सर्वमित्रके दरबारमें पहुँचा। हाथमें था उसके एक सुरा-पात्र। जाते ही वह बोला : "ले लो, ले लो यह शराब! जिसे लोक-परलोककी चिन्ता न हो, मौतका डर न हो, वह इसे ले सकता है।"

राजा बड़ा शराबी था। खुद पीता, दूसरोंको भी पिलाता। राजभरमें अंधेर मचा था।

ब्राह्मणका यह वचन सुन और उसके चेहरेपर तेज देख राजाने उसे प्रणाम किया। कहा : "ब्राह्मण देवता! आप तो खूब सौदा कर रहे हैं। सभी तो अपनी चीजके गुण बताते हैं, पर आप तो उसके दोष बता रहे हैं। बड़े सत्यवादी हैं आप!"

ब्राह्मण बोला : "सर्वमित्र ! जो इसे पीता है, अपना होश खो बैठता है। उसे चाहे जो खिला दो। सड़कपर वह लड़खड़ाकर गिरता है। कुत्ते उसके मुँहमें पेशाब करते हैं। ले लो, ले लो यह शराब ! तुम इसे पीकर सड़कपर नंगे नाचोगे। तुम्हें बहू और बेटीमें कोई भेद न जान पड़ेगा। स्त्री इसे पीकर पतिको पेड़में बाँधकर कोड़े लगायेगी। इसे पीकर लाखवाले खाकमें मिल जाते हैं। राजा लोग रंक बन जाते हैं। पापकी माँ है यह शराब ! ले लो, ले लो यह शराब !"

सर्वमित्र ब्राह्मणके पैरोंपर गिर पड़ा। बोला : "धन्य हैं महाराज ! आपने मुझे शराबके सब अवगुन बता दिये। मैं अब कभी शराब न पिऊँगा। आपने मुझे इसके दोष ऐसे अच्छे ढंगसे समझाये, जैसे बाप बेटेको समझाता है, गुरु चेलेको। मैं पाँच गाँव, सौ दासियाँ और दस रथ देता हूँ आपको पुरस्कारमें।"

ब्राह्मण रूपधारी बोधिसत्त्व बोले : "मुझे कुछ न चाहिए। तुम्हारा पतन मुझसे नहीं देखा जाता, इसीसे मैं ऐसा रूप धरकर तुम्हें बचाने आया।" ●

: ४ :



हिन्दू धममें वेदोंका जो स्थान है, बौद्ध धर्ममें पिटकोंका वही स्थान है ।

भगवान् बुद्धने अपने हाथसे कुछ नहीं लिखा था । उनके उपदेशोंको उनके शिष्योंने पहले याद किया, फिर लिख लिया । वे उन्हें पेटियोंमें रखते थे । इसीसे नाम पड़ा, 'पिटक' ।

पिटक तीन हैं : (१) विनय पिटक, (२) सुत्त पिटक और (३) अभिधम्म पिटक ।

विनय पिटक

विनय पिटकमें विस्तारसे वे नियम दिये गये हैं, जो भिक्षु-संघके लिए बनाये गये थे । इनमें बताया गया है कि भिक्षुओं और भिक्षुणियोंको रोजके जीवनमें किन-किन नियमोंका पालन करना चाहिए ।

सुत्त पिटक

त्रिपिटकमें सबसे महत्त्ववाला पिटक सुत्त पिटक है । इसमें बौद्ध धर्मके सभी मुख्य सिद्धान्त स्पष्ट करके समझाये गये हैं ।

सुत्त पिटक पाँच निकायोंमें बँटा है: १. दीघ निकाय, २. मज्झिम निकाय, ३. संयुत्त निकाय, ४. अंगुत्तर निकाय और ५. खुद्दक निकाय।

खुद्दक निकाय सबसे छोटा है। इसके १५ अंग हैं। इसीका एक अंग है 'धम्मपद'। एक अंग है 'सुत्त निपात'।

अभिधम्म पिटक

अभिधम्म पिटकमें धर्मकी और उसके क्रिया-कलापोंकी व्याख्या पण्डिताऊ ढंगसे की गयी है। वेदोंमें जिस तरह ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं, उसी तरह पिटकोंमें अभिधम्म पिटक है।

ब्रह्म-विहार : १ :

करणीयमत्थ कुसलेन यं तं सन्तं पदं अभिसमेच्च।
सक्को उजू च सूजू च सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ॥१॥
सन्तुस्सको च सुभरो च अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति।
सन्तिन्द्रियो च निपको च अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो ॥२॥

जो आदमी शान्त पद चाहता है, जो कल्याण करनेमें कुशल है, उसे चाहिए कि वह योग्य और परम सरल बने। उसकी बात सुन्दर हो, मीठी हो, नम्रतासे भरी हो।

उसे सन्तोषी होना चाहिए। उसका पोषण सहज होना चाहिए। उसे कामोंमें ज्यादा नहीं फँसा होना चाहिए। उसका जीवन सादा हो। उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों। वह चतुर हो। वह ढीठ न हो। किसी कुलमें उसकी आसक्ति न होनी चाहिए।

न च खुद्दं समाचरे किञ्चि येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं।
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥३॥

वह ऐसा कोई छोटेसे छोटा काम भी न करे, जिसके लिए दूसरे जानकार लोग उसे दोष दें। उसके मनमें ऐसी भावना होनी चाहिए कि सब प्राणी सुखी हों, सबका कल्याण हो, सभी अच्छी तरह रहें।

ये केचि पाणभूतत्थि तसा वा थावरा वा अनवसेसा।
दीघा वा ये महन्ता वा मज्झिमा रस्सकाऽणुकथूला ॥४॥
दिट्ठा वा येव अद्दिट्ठा ये च दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूता वा संभवेसी वा सब्बे सत्ता भवन्ति सुखितत्ता ॥५॥

जितने भी प्राणी हैं, फिर वे जंगम हों या स्थावर, बड़े हों या छोटे, बहुत महीन हों या स्थूल, दिखाई पड़ते हों या न दिखाई पड़ते हों, दूर हों या निकट, पैदा हुए हों या होनेवाले हों, सबके सब सुखी रहें।

न परो परं निकुब्बेथ नातिमञ्ञेथ कत्थचिनं कञ्चि।
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य ॥६॥

कोई किसीको न ठगे। कोई किसीका अपमान न करे। वैर या विरोधसे एक-दूसरेके दुःखकी इच्छा न करे।

माता यथा नियं पुत्तं आयुसा एक-पुत्त-मनुरक्खे।
एवंऽपि सब्बभूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं ॥७॥

माता जैसे अपनी जानकी परवाह न कर अपने इकलौते बेटे-की रक्षा करती है, उसी तरह मनुष्य सभी प्राणियोंके प्रति असीम प्रेमभाव बढ़ाये।

मेत्तं च सब्बलोकस्मि मानसं भावये अपरिमाणं।
उद्धं अधो च तिरियं च असंबाधं अवेरं असपत्तं ॥८॥

बिना बाधाके, बिना वैर या शत्रुताके मनुष्य ऊपर-नीचे, इधर-उधर सारे संसारके प्रति असीम प्रेम बढ़ाये।

तिट्ठं चरं निसिन्नो वा सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो ।
एतं सतिं अधिट्ठेय्य ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ॥९॥

खड़ा हो चाहे चलता, बैठा हो चाहे लेटा, जबतक जगता है, मनुष्यको ऐसी स्मृति बनाये रखनी चाहिए। इसीका नाम है, ब्रह्म-विहार।

दिट्ठि च अनुपगम्म सीलवा दस्सनेन संपन्नो ।
कामेसु विनेय्य गेधं न हि जातु गब्भसेय्यं पुनरेतीति [१] ॥१०॥

ऐसा मनुष्य किसी मिथ्या दृष्टिमें नहीं पड़ता। शीलवान् होकर, शुद्ध दर्शनवाला होकर वह काम, तृष्णाका नाश कर डालता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

धर्माचरण क्या है ? : २ :

एक समय भगवान् कोसलके साला नामक गाँवमें पहुँचे। वहाँके ब्राह्मण गृहस्थोंने कहा : "हमें धर्मका उपदेश दीजिये।"

"अच्छा भोः ! सुनो :

शरीरका अधर्माचरण तीन तरहका होता है, वाणीका अधर्माचरण चार तरहका होता है और मनका अधर्माचरण तीन तरहका होता है।

शरीरका अधर्माचरण :

१. प्राणातिपात : हिंसा करना, खूनसे अपने हाथ रँगना, मार-काट करना, प्राणियोंके प्रति निर्दय होना।

---

१. सुत्त पिटक, खुद्दक निकाय, सुत्त निपात, मेत्त-सुत्त ११०।

२. अदिन्नादान : चोरी। दूसरेका बिना दिया हुआ धन लेना।

३. काममें मिथ्याचार : परायी स्त्रियोंके साथ दुराचार करना।

वाणीका अधर्माचरण :

१. झूठ बोलना। न जानते हुए यह कहना कि मैं जानता हूँ। न देखते हुए यह कहना कि मैंने देखा है। देखते हुए कहना कि मैंने नहीं देखा। इस तरह अपने लिए या परायेके लिए या थोड़े लाभके लिए जान-बूझकर झूठ बोलना।

२. चुगलखोरी करना। फूट डालनेके लिए यहाँकी बात सुनकर वहाँ कहना, वहाँकी बात सुनकर यहाँ कहना। मेल-जोलवालोंको फोड़ना, फूटे हुएको शह देना, गुटबाजीसे खुश होना, गुटमें रहना, भेद पैदा करनेवाली वाणी बोलना।

३. कड़वी भाषा बोलना। तेज, कर्कश, दूसरोंको कड़वी लगनेवाली, दूसरोंको पीड़ा देनेवाली, क्रोधसे भरी हुई, अशान्ति पैदा करनेवाली वाणी बोलना।

४. प्रलाप करना। बे-वक्त बोलना, अयथार्थ बोलना, बिना उद्देश्यके बोलना, निरर्थक बोलना, अनीतिमय बोलना।

मनका अधर्माचरण :

१. अभिध्या। दूसरेके धनका, दूसरेकी संपत्तिका लोभ करना। यह सोचना कि यह संपत्ति, जो दूसरेकी है, मेरी नहीं है, मेरी हो जाय।

२. व्यापन्न चित्त। द्वेषपूर्ण संकल्प करना। जैसे : ये प्राणी मारे जायँ, ये नष्ट हो जायँ, ये न रहें आदि।

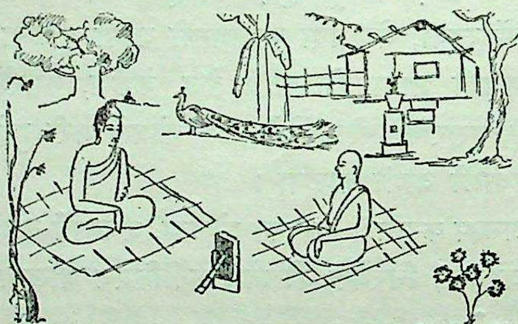
३. मिथ्यादृष्टि। उलटी धारणा होना। 'दान कुछ नहीं है, यज्ञ कुछ नहीं है, सुकृत कुछ नहीं है, दुष्कृत कुछ नहीं है, लोक कुछ नहीं, परलोक कुछ नहीं'—ऐसी धारणा होना।

गृहपतियो ! ये हैं अधर्माचरण। इस तरहके आचरणवाले प्राणी शरीर छोड़नेके बाद नरकमें जाते हैं।

इसके विपरीत आचरण धर्माचरण है और वैसा करनेवाले मरनेके बाद स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं।[१]

हर कामकी कसौटी क्या हो ? : ३ :

राहुलसे भगवान्ने कहा : "राहुल ! दर्पण किस कामके लिए है ?"



"भन्ते ! देखनेके लिए।"

"ऐसे ही राहुल, देख-देखकर कायासे काम करना चाहिए। देख-देखकर वचनसे काम करना चाहिए। देख-देखकर मनसे काम करना चाहिए।

१. मज्झिम निकाय, सालेय्य सुत्तन्त १।५।१।

"जब राहुल, तू कायासे कोई काम करना चाहे, तो तुझे सोचना चाहिए कि मेरा यह काय-कर्म अपने लिए पीड़ादायक तो नहीं ? दूसरेके लिए पीड़ादायक तो नहीं ? दोनोंके लिए पीड़ादायक तो नहीं ? क्या यह अकुशल काय-कर्म है, दुःख देनेवाला काय-कर्म है ? यदि तुझे ऐसा लगे कि यह बुरा काय-कर्म है, तो उसे कभी मत करना ।

"यदि राहुल, तू वचनसे काम करना चाहे, तो भी इसी तरह प्रत्यवेक्षा कर । यदि तू मनसे काम करना चाहे, तो भी इसी तरह प्रत्यवेक्षा कर । वही काम कर, जो न अपने लिए पीड़ादायक हो, न दूसरेके लिए और न दोनोंके लिए ।"[1]

गृहस्थके कर्तव्य

: ४ :

एक समय भगवान् राजगृहके वेणुवनमें विहार कर रहे थे । उन्होंने देखा—श्रृगाल नामका एक वैश्यका लड़का भीगे वस्त्र, भीगे केश, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे—सभी दिशाओंको हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहा है । उन्होंने पूछा :

"गृहपति-पुत्र ! तू क्यों सबेरे उठकर दिशाओंको नमस्कार कर रहा है ?"

वह बोला : "भन्ते ! मरते समय पिताजीने मुझसे कहा था कि तात, दिशाओंको नमस्कार करना । सो भन्ते, पिताकी आज्ञा-का पालन कर रहा हूँ ।"

१. मज्झिम निकाय, अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद-सुत्तन्त २।२।१ ।

भगवान्‌ने कहा : "गृहपति-पुत्र ! आर्य-धर्ममें छह दिशाओं-को इस तरह नमस्कार नहीं किया जाता।"

"तब कैसे किया जाता है, भन्ते ?"

भगवान् बोले : "आर्य श्रावकके जब चार कर्म-क्लेश मिट जाते हैं, चार स्थानोंसे जब वह पाप नहीं करता और जब हानिके छह मुखोंका वह सेवन नहीं करता—इस तरह १४ पापोंसे वह दूर हो जाता है, तब वह छहों दिशाओंको आच्छादितकर लोक, परलोक दोनोंपर विजय प्राप्त कर लेता है और मरनेपर स्वर्ग जाता है।

चार कर्म-क्लेश

कर्म-क्लेश, कर्मके मल चार हैं : १. प्राणातिपात (प्राणियों-को मारना, (२) अदत्तादान (चोरी करना), ३. परदार-गमन (कामसम्बन्धी दुराचार करना) और ४. मृषावाद (झूठ बोलना)।

पापके चार स्थान

पापके चार स्थान ये हैं : १. छन्द, रागके रास्तेमें जाकर पापकर्म करना, २. द्वेषके रास्तेमें जाकर पापकर्म करना, ३. मोहके रास्तेमें जाकर पापकर्म करना और ४. भयके रास्तेमें जाकर पापकर्म करना।

गृहपति-पुत्र ! आर्य श्रावक न छन्दके रास्ते जाता है, न द्वेषके। न मोहके रास्ते जाता है, न भयके।

छह अपाय-मुख

छह भोगोंके अपाय-मुख हैं : १. मद्यपान, शराब पीना,

२. संध्यामें चौरस्तेकी सैर, ३. नाच-तमाशा, ४. जुआ, ५. दुष्टकी मित्रता और ६. आलस्य।

नशेके छह कुपरिणाम हैं: १. तत्काल धनकी हानि, २. कलहका बढ़ना, ३. रोगोंका घर, ४. बदनामीका कारण, ५. लज्जाका नाश और ६. बुद्धिका दुर्बल करना।

जुएके छह दोष हैं: १. जीतनेपर वैर, २. हारनेपर धनका सोच, ३. तत्काल धनका नुकसान, ४. सभामें जानेपर जुआरीपर कोई विश्वास नहीं करता, ५. मित्र और सलाहकार तिरस्कार करते हैं और ६. शादी-विवाह करनेको कोई आता है, तो यह सोचकर उसके यहाँ कन्या नहीं देता कि यह जुआरी है, इसलिए स्त्रीका भरण-पोषण नहीं कर सकता।

मित्र और अमित्र

पराया धन हरनेवाले, बातूनी, खुशामदी और धनके नाशमें सहायता करनेवाले मित्रोंको अमित्र जानना चाहिए।

मित्र उसीको जानना चाहिए, जो उपकारी हो, समान सुख-दुःखी हो, हितवादी हो और अनुकम्पा करनेवाला हो।

छह दिशाओंकी पूजा

छह दिशाओंकी पूजा यह है: १. माता-पिताकी सेवा, २. आचार्यकी सेवा, ३. पत्नीकी सेवा, ४. मित्रोंकी सेवा, ५. सेवककी सेवा और ६. साधु-ब्राह्मणोंकी सेवा।

श्रृगाल बोला: "आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! जैसे उल्टेको सीधा कर दे, जैसे ढँकेको खोल दे, मार्ग-भूलेको मार्ग बता दे, अन्धकारमें दीपक दिखा दे, वैसे भगवान्ने धर्मको प्रकाशित

किया। 'बुद्धं सरणं गच्छामि ! धम्मं सरणं गच्छामि !! संघं सरणं गच्छामि' !!!"[१]

पाणं न हाने न चादिन्नमादिये,
मुसा न भासे न च मज्जपोसिया।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना
रत्तिं न भुञ्जेय्य विकाल भोजनं ॥[२]

गृहस्थको चाहिए कि वह किसी प्राणीकी हिंसा न करे, चोरी न करे, असत्य न बोले, शराब आदि मादक पदार्थ न ले, व्यभिचारसे दूर रहे और रात्रिमें असमय भोजन न करे।

हँसीमें भी झूठ न बोलो ! : ५ :

एक समय भगवान् राजगृहके वेणुवनमें थे। राहुल अम्ब-लट्ठिकामें थे। एक दिन शामको भगवान् राहुलके यहाँ पहुँचे। राहुलने देखकर आसन बिछाया और पैर धोनेके लिए लोटेमें पानी ला रखा। पैर धोकर भगवान् आसनपर आ बैठे। उन्होंने राहुलसे कहा :

"राहुल ! लोटेमें बचे थोड़ेसे पानीको देखता है न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"राहुल, ऐसा ही थोड़ा श्रमणभाव उन लोगोंमें है, जिन्हें झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं आती।"

जलको फेंककर लोटेको औंधाकर भगवान्ने कहा : "राहुल,

---

१. दीघ निकाय, पाथिक वग्ग, सिगालोवाद-सुत्त (३।८)।
२. सुत्तनिपात, धम्मिनिक सुत्त २५।

ऐसा ही औंधा श्रमणभाव उन लोगोंका है, जिन्हें झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं आती ।”



लोटेको सीधा करके भगवान्ने कहा : “ऐसा ही खाली, तुच्छ श्रमणभाव उन लोगोंका है, जिन्हें झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं आती । जिसे जान-बूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं, उसके लिए कोई भी पाप-कर्म अकरणीय नहीं, ऐसा मैं मानता हूँ । इसलिए राहुल, हँसीमें भी झूठ नहीं बोलूँगा, यह सीख लेनी चाहिए ।”[1]

क्रोधसे सात अनर्थ : ६ :

भगवान्ने कहा :

“भिक्षुओ ! जो स्त्री या पुरुष नाराज होता है, उसके शत्रुको इन सात बातोंसे खुशी होती है ।”

“वे सात बातें क्या हैं ?”

“भिक्षुओ ! वे सात बातें इस प्रकार हैं :

१. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु कुरूप हो जाय ।

---

१. मज्झिम निकाय, अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद-सुत्तन्त २।२।१ ।

क्यों ? इसलिए कि कोई यह नहीं पसन्द करता कि उसका शत्रु स्वरूपवान् हो, सुन्दर हो। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो भले ही उसने मल-मलकर स्नान किया हो, सुगन्ध लगायी हो, बाल और दाढ़ी ठीक ढंगसे बनायी हो, उसके कपड़े स्वच्छ हों, फिर भी वह कुरूप लगता है, क्योंकि उसकी आँखोंमें क्रोध भरा हुआ है। इससे उसके शत्रुको खुशी होती है।

२. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु पीड़ा पाये। क्यों ? इसलिए कि कोई आदमी यह पसन्द नहीं करता कि उसका शत्रु आरामसे रहे। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो भले ही वह बढ़िया बिस्तरपर पड़ा हो, बढ़िया कंबल उसके पास हों, मृगचर्म ओढ़े हो, सिर और पैरके नीचे बढ़िया तकिये लगे हों, फिर भी वह पीड़ाका अनुभव करता है, क्योंकि उसकी आँखोंमें क्रोध भरा हुआ है। इससे उसके शत्रुको खुशी होती है।

३. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु सम्पन्न न रहे। क्यों ? इसलिए कि अपने शत्रुकी सम्पन्नता किसीको अच्छी नहीं लगती। मनुष्य जब क्रोधका शिकार होता है, तब वह बुरेको अच्छा और अच्छेको बुरा समझता है। इस तरह करते रहनेसे उसे हानि और कष्ट भोगना पड़ता है। उसकी सम्पन्नता जाती रहती है। इससे उसके शत्रुको खुशी होती है।

४. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु धनवान् न हो। क्यों ? इसलिए कि कोई यह पसंद नहीं करता कि उसका शत्रु पैसेवाला हो। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो भले ही उसने अपने श्रमसे संपत्ति जुटायी हो, अपनी भुजाओंसे, अपने श्रमके बलपर पसीनेसे, ईमानदारीसे पैसा इकट्ठा किया हो, वह गलत काम करने लगता

है, जिससे उसे जुर्माना आदि भरना पड़ता है। उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। इससे उसके शत्रुको खुशी होती है।

५. मनुष्य चाहता है कि उसके शत्रुकी नामवरी न हो। क्यों? इसलिए कि कोई आदमी यह पसंद नहीं करता कि उसके शत्रुकी ख्याति हो। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो पहले उसने भले ही अपने अच्छे कामोंसे नामवरी प्राप्त की हो, अब लोग कहने लगते हैं कि यह तो बड़ा क्रोधी है। उसकी नामवरी मिट जाती है। इससे उसके शत्रुको खशी होती है।

६. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु मित्रहीन रहे, उसका कोई मित्र न हो। क्यों? इसलिए कि कोई मनुष्य नहीं चाहता कि उसके शत्रुके कोई मित्र हो। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो उसके मित्र, उसके साथी, उसके सगे-सम्बन्धी उससे दूर रहने लगते हैं, क्योंकि वह क्रोधका शिकार होता है। इससे उसके शत्रु-को खुशी होती है।

७. मनुष्य चाहता है कि मरनेपर उसके शत्रुको सुगति न मिले। उल्टे नरकमें बुरा स्थान मिले। क्यों? इसलिए कि कोई शत्रु नहीं चाहता कि उसके शत्रुको अच्छा स्थान मिले। तो, जब मनुष्यको क्रोध आता है, तो वह मन, वचन, कर्मसे तरह-तरहके गलत काम करता है। इससे मरनेपर वह नरकमें जाता है। इससे उसके शत्रुको खुशी होती है।

क्रोध करनेसे मनुष्यका चेहरा कुरूप हो जाता है, उसे पीड़ा होती है, वह गलत काम करता है, उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, उसकी बदनामी होती है। उसके मित्र और सगे-सम्बन्धी उसे छोड़ देते हैं और उसपर तरह-तरहके संकट आते हैं।

क्रोधी आदमी किसी बातका ठीक अर्थ नहीं समझता। वह अन्धकारमें रहता है। वह अपना होश खो बैठता है। वह मुँहसे कुछ भी बक देता है। उसे किसी बातकी लाज नहीं रहती। वह किसीकी भी हत्या कर बैठता है, फिर वह साधारण आदमी हो या साधु हो, माता-पिता हो या और कोई। वह आत्महत्यातक कर बैठता है।

क्रोधसे मनुष्यका सर्वनाश होता है। जो लोग क्रोधका त्याग कर देते हैं, काम, क्रोध, ईर्ष्यासे अपनेको मुक्त कर लेते हैं, वे निर्वाण पाते हैं।"[१]

क्रोधसे कैसे छूटें ? : ७ :

भगवान्ने कहा :

भिक्षुओ ! क्रोध और क्षोभके उदय होनेपर पाँच प्रकारसे उससे छुटकारा मिल सकता है :

१. मैत्रीसे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति मैत्रीकी भावना करो।

२. करुणासे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति करुणाकी भावना करो।

३. मुदितासे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो उसके प्रति मुदिताकी भावना करो।

४. उपेक्षासे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति उपेक्षाकी भावना करो।

---

१. अंगुत्तर निकाय, सत्तक निपात ६०।

५. कर्मोंके स्वामित्वकी भावनासे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके बारेमें ऐसा सोचो कि वह जो कर्म करता है, उसका फल अच्छा हो या बुरा, उसीको भोगना पड़ेगा।[1]

प्राणिहिंसा मत करो : ८ :

भगवान्ने 'उच्चाशयन, महाशयन' का निषेध किया है, यह सोचकर उस समय षड्वर्गीय भिक्षु, सिंहचर्म, व्याघ्रचर्म, चीते-का चर्म—इन तीन महाचर्मोंको धारण करते थे और चारपाई-के हिसाबसे भी काटकर रखते थे। चारपाईके भीतर भी बिछाते थे और बाहर भी। लोग देखकर हैरान हुए। भगवान्से यह बात कही। भगवान् बोले :

"भिक्षुओ ! महाचर्मोंको, सिंह, बाघ और चीतेके चर्मको नहीं धारण करना चाहिए। जो धारण करे, उसे दुक्कट (दुष्कृत) का दोष !"

भगवान्ने महाचर्मोंका निषेध किया है, यह सोच षड्वर्गीय भिक्षु गायके चामको धारण करते थे। उसे चारपाईके प्रमाणसे भी काट रखते थे।

एक दिन एक दुराचारी भिक्षुने सुन्दर चमड़ेके लिए एक चितकबरे बछड़ेकी हत्या की।

लोग हैरान थे। भिक्षु प्राणिहिंसाकी कैसे प्रेरणा करेगा ? भगवान्ने तो अनेक प्रकारसे प्राणिहिंसाकी निन्दा की है।

भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही। उन्होंने उस पापी

---

१. अंगुत्तर निकाय, पाणच्चक निपात १६१।

भिक्षुसे पूछा : "सचमुच भिक्षु, तुमने प्राणिहिंसाके लिए प्रेरणा की ?"

"सचमुच भगवन् !"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा : "मोघ पुरुष ! कैसे तुमने प्राणि-हिंसाकी प्रेरणा की ? मैंने तो अनेक प्रकारसे प्राणिहिंसाकी निन्दा और उसके त्यागकी प्रशंसा की है ।

भिक्षुओ, प्राणिहिंसाकी प्रेरणा नहीं करनी चाहिए । जो प्रेरणा करे, उसको धर्मानुसार दण्ड करना चाहिए । भिक्षुओ, गायका चाम नहीं धारण करना चाहिए । जो धारण करे, उसे दुक्कटका दोष ! भिक्षुओ, कोई भी चर्म नहीं धारण करना चाहिए । जो धारण करे, उसे दुक्कटका दोष !"[१]

चित्तके मल : ९ :

एक समय भगवान् श्रावस्तीके जेतवनमें विहार कर रहे थे । उन्होंने भिक्षुओंसे कहा : "भिक्षुओ ! जैसे कोई मैला-कुचैला कपड़ा रँगरेज किसी रंगमें रँगे, तो वह बदरंग ही रहेगा, वैसे ही चित्तके मलिन होनेसे दुर्गति अनिवार्य है ।"

चित्तके मल ये हैं, जिन्हें 'उपक्लेश' भी कहा जाता है : १. विषमलोभ, २. द्रोह, ३. क्रोध, ४. पाखंड, ५. अमर्ष, ६. निष्ठुरता, ७. ईर्ष्या, ८. मात्सर्य, ९. ठगना, १०. शठता, ११. जड़ता, १२. हिंसा, १३. मान, १४. अतिमान, १५. मद और १६. प्रमाद ।[२]

---

१. विनयपिटक, महावग्ग, नियम ५।२।५-६ । २. सुत्तपिटक, मज्झिम निकाय, वत्थ-सुत्तन्त १।१।७ ।

अंगुलिमाल

एक समय भगवान् जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय राजा प्रसेनजित्के राज्यमें एक डाकू था अंगुलिमाल। बड़ा भयानक, बड़ा खूँखार! मार-काटमें उसे मजा आता। दयाका उसमें नाम नहीं था। उसने कितने ही ग्राम उजाड़ दिये।

भगवान् श्रावस्तीमें पिण्डचार करके उसी रास्ते चले, जहाँ डाकू अंगुलिमाल रहता था। ग्वालोंने, किसानोंने, राहगीरोंने भगवान्से कहा :

"हे भन्ते! मत जाओ इस रास्ते। अंगुलिमाल डाकू रहता है इधर। वह मनुष्यों को मार-मारकर अंगुलियोंकी माला पहनता है। बीस, तीस, चालीस, पचास, आदमियोंके दल भी उसके हाथ पड़ जाते हैं।"

भगवान् मौन धारणकर चलते रहे।

दूसरी बार भी, तीसरी बार भी ग्वालों आदि ने भगवान्को रोका पर वे चलते ही चले गये।

अंगुलिमाल ने दूरसे ही भगवान् को आते देखा। सोचने लगा—आश्चर्य है जी! पचासों आदमी भी मिलकर चलते हैं, तो मेरे हाथमें पड़ जाते हैं, पर यह श्रमण अकेला ही चला आ रहा है मानो मेरा तिरस्कार ही करता आ रहा है। क्यों न इसे जानसे मार दूं?

ढाल-तलवार और तीर-धनुष लेकर वह भगवान्की तरफ दौड़ पड़ा। फिर भी वह उन्हें नहीं पा सका।

अंगुलिमाल सोचने लगा—आश्चर्य है जी ! आश्चर्य है। मैं दौड़ते हुए हाथीको, घोड़ेको, रथको दौड़कर पकड़ लेता हूँ, पर मामूली चालसे चलनेवाले इस श्रमणको नहीं पकड़ पा रहा हूँ !

खड़ा होकर भगवान्से बोला : "खड़ा रह श्रमण !"



"मैं स्थित हूँ अंगुलिमाल ! तू भी स्थित हो।"

"श्रमण ! जाते हुए तू कहता है—'स्थित हूँ' और मुझ खड़े हुएको कहता है—'अस्थित'। भला यह तो बता कि कैसे तू स्थित है और मैं अस्थित ?"

"अंगुलिमाल ! सारे प्राणियोंके प्रति दण्ड छोड़नेसे मैं सर्वदा स्थित हूँ। तू प्राणियोंमें असंयमी है। इसलिए तू अस्थित है।"

अंगुलिमालपर भगवान्की बातोंका असर पड़ा। उसने निश्चय किया कि मैं चिरकालके पापोंको छोड़ूँगा।

उसने अपनी तलवार और हथियार खोह, प्रपात और नालेमें फेंक दिये। भगवान्के चरणोंकी वन्दना की और उनसे प्रव्रज्या माँगी।

भगवान्‌ने "आ भिक्षु !" कहकर उसे दीक्षा दी।

अंगुलिमाल पात्र-चीवर ले श्रावस्तीमें भिक्षाके लिए निकला। किसीका फेंका हुआ ढेला उसके शरीरपर लगा। दूसरेका फेंका डण्डा उसके शरीरपर लगा। तीसरेका फेंका कंकड़ उसके शरीरपर लगा। बहते खून, फटे सिर, टूटे पात्र, फटी संघाटीके साथ अँगुलिमाल भगवान्‌के पास पहुँचा। उन्होंने दूरसे कहा :



"ब्राह्मण ! तूने कबूल कर लिया। जिस कर्मफलके लिए तुझे हजारों वर्ष नरकमें पचना पड़ता, उसे तू इसी जन्ममें भोग रहा है।"[१]

अंगुलिमालने एकान्तमें ध्यानावस्थित हो अनन्त शान्ति और सुखका अनुभव किया। उसने कहा : "तथागत द्वारा विना दण्ड, बिना शस्त्रके ही मैं दमन किया गया हूँ। पहले मैं हिंसक था, आज अहिंसक हूँ। बुद्धने मुझे शरण दी, मेरा भवजाल सिमट गया।"

१. मज्झिम निकाय, अंगुलिमाल-सुत्तन्त २।४।६।

: ५ :



धम्मपद
में कहा है

हिन्दू-धर्ममें गीताका जो स्थान है, बौद्ध धर्ममें वही स्थान है धम्मपदका। जैसे गीता एक अंश है महाभारतका, उसी तरह धम्मपद एक अंश है सुत्तपिटकके खुद्दक निकायका। धम्मपदमें २६ वग्ग हैं, ४२३ श्लोक।

बौद्ध धर्मको समझनेके लिए अकेला धम्मपद ही काफी है। मनुष्यको अन्धकारसे प्रकाशमें ले जानेके लिए यह प्रकाशमान दीपक है। ठीक ही कहा है, इसमें—

को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेसथ॥

यह हँसना कैसा ? यह आनन्द कैसा ? जब रोज चारों ओर आग लगी है। संसार उस आगमें जला जा रहा है। तब अन्धकारमें घिरे हुए तुम लोग क्यों नहीं खोजते प्रकाशको ?

सारा खेल मनका ही है : १:

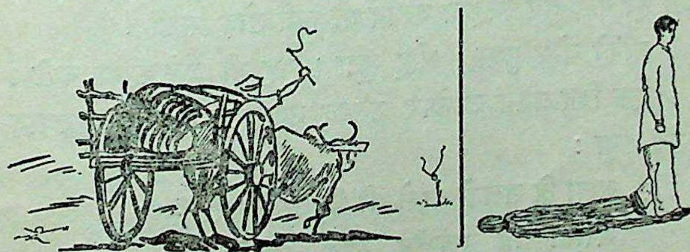
श्रावस्तीके जेतवनमें चक्खुपाल नामके एग अंधे अर्हत भिक्षु थे। सुबह वे टहलते थे, तो उनके पैरोंके नीचे दबकर बहुत-सी वीरबहूटियाँ मर जाती थीं। कुछ भिक्षुओंने यह बात भगवान् बुद्धसे कही। वे बोले : "भिक्षुओ, चक्खुपाल अर्हत भिक्षु है। अर्हतको जीवहिंसा करनेकी चेतना नहीं होती।"

भिक्षुओंने पूछा : "भन्ते ! वे अन्धे क्यों हो गये ?"

भगवान् बोले : "चक्खुपाल अपने पूर्वजन्मोंमें एक बार वैद्य थे। उस समय उन्होंने बुरे इरादेसे एक स्त्रीकी आँखें फोड़ दी थीं। उसीका कर्मफल उनके पीछे लगा है :

मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं' व वहतो पदं॥[1]

मन ही सारी प्रवृत्तियोंका अगुआ है। उनका आरम्भ मनसे ही होता है। वे मनोमय हैं। जब कोई आदमी दूषित मनसे



बोलता है या वैसा कोई काम करता है, तो दुःख उसका पीछा

---

१. यमकवग्गो १।

उसी तरह करता है, जिस तरह बैलगाड़ीके पहिये बैलके पैरोंका पीछा करते हैं।

मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा ।
ततो नं सुखमन्वेति छाया व अनपायिनी ॥[१]

मन ही सारी प्रवृत्तियोंका अगुआ है। वे मनसे ही आरम्भ होती हैं। यदि मनुष्य शुद्ध मनसे बोलता है या कोई काम करता है, तो सुख उसी तरह उसका पीछा करता है, जिस तरह मनुष्यके पीछे उसकी छाया।"

अपना उद्धार अपने हाथमें : २ :

कुमार कश्यपने सयाने होकर बौद्ध धर्मकी दीक्षा ली। उन्हें अर्हत्व मिल गया। उनकी माँने उन्हें १२ बरससे नहीं देखा था। एक दिन भिक्षाके लिए वे उसके पास पहुँच गये। वह भी दीक्षा ले चुकी थी, फिर भी उसके स्तनोंसे दूधकी धार बह उठी। उसने कश्यपको पकड़ लिया।

"छिः छिः, यह क्या कर रही हो ? दीक्षा लिये तुम्हें इतने दिन हो गये, तुम स्नेहका बन्धन भी नहीं तोड़ सकीं !"

माँको बोध हुआ। मोह छूटा। वह भी अर्हत्व पा गयी।

एक दिन प्रसंग उठनेपर उसका उदाहरण देते हुए भगवान् बुद्धने कहा :

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥[२]

मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है। भला दूसरा कोई उसका

---

१. यमकवग्गो २। २. अत्तवग्गो १२।४।

स्वामी कैसे हो सकता है ? मनुष्य अपने-आप ही अच्छी तरहसे अपना दमन करके दुर्लभ स्वामित्वको, निर्वाणको पा सकता है ।

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।
तस्मा संञ्ञम'त्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो ॥[1]

मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है । स्वयं ही वह अपनी गति है । इसलिए तुम अपने-आपको संयममें रखो, जैसे वनिया अपने सधे हुए घोड़ेको अपने वशमें रखता है ।

अपने-आपको जीतो : ३ :

यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने ।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥[2]

जो आदमी हजारों आदमियोंको लड़ाईमें हजार बार जीत ले, उससे भी बढ़कर योद्धा वह है, जो अपने-आपको जीत ले ।

अत्तना व कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति ।
अत्तना अकतं पापं अत्तना व विसुज्झति ।
सुद्धी असुद्धी पच्चत्तं नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये ॥[3]

अपना किया हुआ पाप अपनेको मलिन करता है । पाप न करनेपर मनुष्य शुद्ध रहता है । मनुष्यका शुद्ध रहना या अशुद्ध रहना अपने-आपपर ही निर्भर है । कोई भी आदमी दूसरे आदमी-को शुद्ध नहीं कर सकता ।

अत्तानं चे तथा कयिरा यथ'ञ्ञमनुसासति ।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥[4]

---

१. भिक्खुवग्गो २५।२१ । २. सहस्सवग्गो ८।४ । ३. अत्तवग्गो १२।९ । ४. वही, १२।३ ।

मनुष्य दूसरोंको जैसा बननेका उपदेश देता है, वैसा वह अपने-आपको बना ले। पहले वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर ले, तब दूसरोंसे इन्द्रिय-दमनके लिए कहे। सच बात तो यह है कि अपना दमन करना ही कठिन है।

किसी को सताओ मत : ४ :

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥[१]

सब लोग दण्डसे डरते हैं। मृत्युसे सभी भय खाते हैं। दूसरोंको अपनी तरह जानकर मनुष्य न तो किसीको मारे और न किसीको मारनेकी प्रेरणा करे।

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥[२]

सब लोग दण्डसे डरते हैं। जीवन सबको प्यारा लगता है। दूसरोंको अपने जैसा ही जानकर मनुष्य न तो किसीको मारे, न किसीको मारनेकी प्रेरणा करे।

सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं॥[३]

जो मनुष्य अपने सुखकी इच्छा करता है और सुखकी इच्छा करनेवाले दूसरे प्राणियोंको सताता है, वह मरकर कभी सुख नहीं पाता।

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो ति पवुच्चति॥[४]

---

१. दण्डवग्गो १०।१। २. वही, १०।२। ३. वही, १०।३।
४. धम्मट्ठवग्गो १९।१५।

प्राणियोंकी हिंसा करनेसे कोई आर्य नहीं होता। जो किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करता, उसीको आर्य कहा जाता है।

वैरसे वैर नहीं मिटता : ५ :

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति॥[१]

'उसने मुझे गाली दी', 'उसने मुझे मारा', 'उसने मुझे हराया', 'उसने मुझे लूटा'—जो अपने मनमें इस तरहकी बातोंकी गाँठ बाँधे रहते हैं, उनका वैर कभी शान्त नहीं होता।

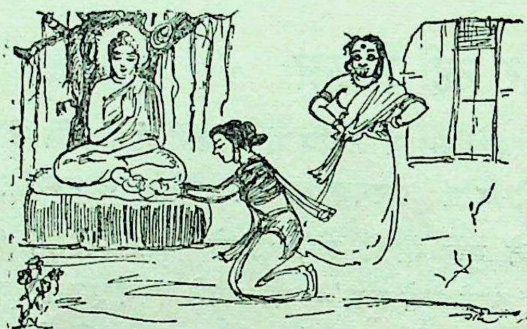
अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति॥[२]

'उसने मुझे गाली दी', 'उसने मुझे मारा', 'उसने मुझे हराया', 'उसने मुझे लूटा'—जो अपने मनमें इस तरहकी बातों-की गाँठ नहीं बाँधे रहते, उनका वैर शान्त हो जाता है।

दो सौतें आपसमें डाह करती थीं। कई जन्मोंतक वे एक-दूसरीसे बदला लेती रहीं। एक जनमी कन्या होकर, दूसरी काली यक्षिणी होकर। कन्या बड़ी हुई। शादी हुई। इसे जब-जब बच्चे होते, तो यक्षिणी आकर उन्हें खा डालती। एक बार संयोग-से जेतवनमें भगवान् बुद्ध विराजमान थे। पासमें ही बैठी वह स्त्री अपने बच्चेको दूध पिला रही थी। तभी आ गयी यक्षिणी। बच्चेको गोदमें लिये हुए माँ दौड़ी भगवान्के पास। उनके

१. यमकवग्गो ३। २. वही, ४।

चरणोंमें बच्चेको डालकर वह बोली : "भन्ते ! इसे जीवनदान दीजिये ।"



भगवान्‌ने यक्षिणीको समझाकर उसका क्रोध शान्त किया । उन्होंने कहा :

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ।।[1]

इस संसारमें वैरसे वैर कभी नहीं मिटता । वैर न करनेसे, मित्रता करनेसे वैर मिटता है—यही सनातन धर्म है । यही सदाका नियम है ।

परदुक्खूपधानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति ।
वेरसंसग्गसंसट्ठो वेरा सो न पमुच्चति ।।[2]

जो कोई दूसरेको दुःख देकर अपने लिए सुख चाहता है, वह वैरकी लपेटमें पड़ा जीव वैरसे कभी नहीं छूटता ।

---

१. यमकवग्गो ५ । २. किण्णकवग्गो २१।२ ।

वह अपनी जड़ खोदता है

यो पाणमतिपातेति मुसावादं च भासति ।
लोके अदिन्नं आदियति परदारं च गच्छति ॥
सुरामेरयपानं च यो नरो अनुयुञ्जति ।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खणति अत्तनो ॥[१]

जो आदमी दूसरे प्राणियोंकी हिंसा करता है, झूठ बोलता है, किसीकी चीज बिना दिये हुए लेता है, परायी स्त्रीके पास जाता है, शराब पीता है—वह इसी लोकमें अपनी जड़ खोदता है ।

चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो आपज्जति परदारूपसेवी ।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं निन्दं ततीयं निरयं चतुत्थं ॥[२]

जो आदमी परायी स्त्रीका सेवन करता है, उसकी चार गतियाँ होती हैं : उसे पाप मिलता है, वह सुखसे सो नहीं पाता, संसारमें उसकी निन्दा होती है और उसे नरकमें जाना पड़ता है ।

अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका भीतस्स भीताय रतीच थोकिका ।
राजा च दण्डं गरुकं पणेति तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥[३]

ऐसे पुरुषको अपुण्य मिलता है । बुरी गति होती है । पुरुष भी भयभीत रहता है, स्त्री भी । इस हालतमें मिलनेसे दोनोंको बहुत थोड़ी देरका आनन्द मिलता है । राजा उसे भारी दण्ड देता है । इसलिए परायी स्त्रीके पास कभी न जाय ।

---

१. मलवग्गो १८।१२-१३ । २. निरयवग्गो २२।४ । ३. वही, २२।५ ।

प्रेमसे क्रोधको जीतो

उत्तरा राजगृहके पूर्ण श्रेष्ठीकी बेटी थी। एक श्रेष्ठी-पुत्रसे उसका विवाह हुआ। उसका पति न तो दान करता था, न तथागतमें श्रद्धा रखता था। उत्तराके पिताने कुछ धन भेजकर उससे कहा : "नगरकी गणिका सिरिमाको कुछ दिनके लिए पतिकी सेवामें नियुक्त कर तुम पन्द्रह दिन पुण्यकर्म करो।"

उत्तरा भिक्षुसंघके लिए दानका प्रबन्ध करा रही थी। शरीरसे पसीना टपक रहा था। 'कैसी मूढ़ है यह उत्तरा!' ऐसा सोचकर ऊपरी छतपर खड़ा उसका पति हँसा। सिरिमाने सोचा कि श्रेष्ठी-पुत्र उत्तराको बहुत चाहता है। मैं उत्तराको पीड़ित करूँगी।

सिरिमा कलछीमें खौलता घी भर लायी और नीचे उतरकर



उत्तरापर डालने गयी। उत्तराने मैत्रीभावसे उसका स्वागत

किया। गरम घी उसे पानी-सा शीतल लगा। सिरिमा फिर जाकर घी कलछीमें भर लायी। दासियोंने देखा, तो उन्होंने उसे पकड़कर खूब पीटा। उत्तराने उन्हें रोककर तेलसे उसकी मालिश करायी, स्नान कराया।

सिरिमाको अपनी गलती महसूस हुई। उसने उत्तराके पैरोंपर पड़कर क्षमा माँगी। उसने कहा : "भगवान्‌से क्षमा माँगो।"

दूसरे दिन भगवान् बुद्ध पधारे, तो सिरिमाने उनके चरणोंपर गिरकर रोते-रोते सारी बात कह सुनायी। भगवान् बोले : धन्य है उत्तरा, क्रोधको इसी तरह प्रेमसे जीतना चाहिए :

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलीकवादिनं॥[१]

अक्रोधसे क्रोधको जीते। असाधुको साधुतासे, भलाईसे जीते। कंजूसको दानसे जीते। झूठेको सत्यसे जीते।

यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं व धारये।
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो॥[२]

जो आदमी उठते हुए क्रोधको इस तरह रोक लेता है, जिस तरह राहसे भटकते हुए रथको सारथी, उसीको मैं सच्चा सारथी कहता हूँ। दूसरे लोग तो लगाम थामनेवाले हैं।

सच्चं भणे न कुज्झेय्य दज्जाप्पस्मिम्पि याचितो।
एतहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके॥[३]

---

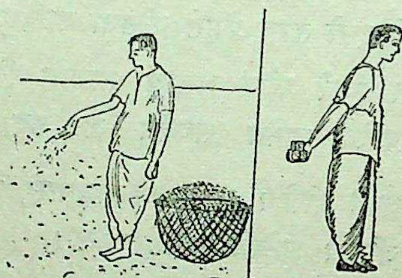
१. कोधवग्गो १७३। २. वही, १७२। ३. वही, १७४।

मनुष्य सच बोले, किसीपर क्रोध न करे और जो कोई माँगे, उसे कुछ-न-कुछ अवश्य दान दे। इन तीन साधनोंसे मनुष्य देवताओंके पास जाता है।

किसीके दोष न देखो : ८ :

सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुनाति यथा भुसं।
अत्तनो पन छादेति कलिं व कितवा सठो॥[१]

दूसरेका दोष देखना आसान है, अपना दोष देखना कठिन।



मनुष्य दूसरोंके दोषोंको भुसकी तरह फैलाता है और अपने दोषोंको ऐसे छिपाता है, जैसे जुआरी पाँसोंको।

परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिनो।
आसवा तस्स वड्ढन्ति आरा सो आसवक्खया॥[२]

जो आदमी दूसरोंके दोष देखता रहता है और नित्य दूसरोंसे खीझता रहता है, उसके चित्तके मल बढ़ जाते हैं। उसके मनका मैल मिटना कठिन है।

---

१. मलवग्गो १८।१८। २. वही, १८।१९।

सच बोलो : कहो सो करो

एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो ।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ॥[1]

सत्यको छोड़कर जो असत्य बोलता है, धर्मका उल्लंघन करता है, परलोककी जिसे चिन्ता नहीं है, वह आदमी कोई भी बड़ेसे बड़ा पाप कर सकता है ।

बहुं पि चे सहितं भासमानो न तक्करो होति नरो पमत्तो ।
गोपो व गावो गणयं परेसं न भागवा सामञ्ञस्स होति ॥[2]

जो मनुष्य शास्त्रकी बातें तो बहुत कहता है, पर उनके अनुसार आचरण नहीं करता, वह वैसा ही है, जैसा दूसरोंकी गायें गिननेवाला ग्वाला । वह भिक्षु बनने लायक नहीं ।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं अगन्धकं ।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ॥[3]

देखनेमें फूल खूब सुन्दर हो, पर उसमें खुशबू न हो तो उसका होना, न होना बराबर है । उसी तरह जो आदमी बोलता तो बहुत मीठा है, पर जैसा बोलता है वैसा करता नहीं, उसकी मीठी वाणी व्यर्थ है ।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं ।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति कुब्बतो ॥[4]

जिस तरह खुशबूवाले सुन्दर फूलका जीना सार्थक है, उसी तरह जो जैसा कहता है वैसा करता है, उसकी वाणी सफल होती है ।

---

१. लोकवग्गो १३।१० । २. यमकवग्गो १।१९ । ३. पुप्फवग्गो ४।८ । ४. वही, ४।९ ।

मन, वचन, कर्मका संयम करो

कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संवुतो सिया ।
कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे ।।[१]

शरीरके दुराचारसे मनुष्य अपनेको बचाये। अपने शरीरका संयम करे। शरीरका दुराचार छोड़कर सदाचारका पालन करे।

वची पकोपं रक्खेय्य वाचाय संवुतो सिया ।
वची दुच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे ।।[२]

वाणीके दुराचारसे मनुष्य अपनेको बचाये । अपनी वाणीका संयम करे । वाणीके दुराचारको छोड़कर सदाचारका पालन करे ।

मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया ।
मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे ।।[३]

मनके दुराचारसे मनुष्य अपनेको बचाये । अपने मनका संयम करे । मनके दुराचारको छोड़कर सदाचारका पालन करे ।

कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता ।
मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता ।।[४]

जो बुद्धिमान् लोग शरीरको संयममें रखते हैं, वाणीको संयममें रखते हैं, मनको संयममें रखते हैं, वे ही पूरे तौरसे संयमी माने जाते हैं ।

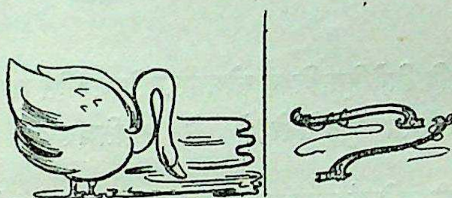
---

१. कोधवग्गो १७।११। २. वही, १७।१२। ३. वही, १७।१३। ४. वही, १७।१४।

ब्रह्मचर्यका पालन करो :११:

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं ।
जिण्णकोञ्चा व झायन्ति खीणमच्छे व पल्लले ॥[1]

जो लोग ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करते और जवानीमें धन नहीं जुटाते, वे उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जिस तरह मछलियोंसे रहित तालाबमें बूढ़े क्रौंच पक्षी ।



अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं ।
सेन्ति चापातिखित्ता व पुराणानि अनुत्थुनं ॥[2]

जो लोग ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करते और जवानीमें धन नहीं जुटाते, वे धरतीपर उसी तरह गिर पड़ते हैं, जैसे टूटी हुई कमानें । पुरानी बातें कह-कहकर वे पछताते रहते हैं ।

तृष्णाका बन्धन :१२:

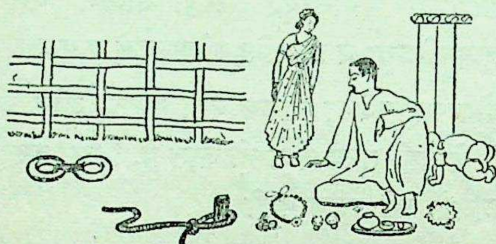
न तं दल्हं बन्धनमाहु धीरा यदायसं दारुजं बब्बजं च ।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥[3]

लोहेका बन्धन हो, लकड़ीका बन्धन हो, रस्सीका बन्धन हो, इसे बुद्धिमान् लोग बन्धन नहीं मानते । इनसे कड़ा बन्धन

---

१. जरावग्गो ११।१०। २. वही, ११।११। ३. तण्हावग्गो २४।१२।

तो है, सोनेका, चाँदीका, मणिका, कुण्डलका, पुत्रका, स्त्रीका ।



सरितानि सिनेहितानि च सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो ।
ते सोतसिता सुखेसिनो ते वे जातिजरूपगा नरा ॥[1]

तृष्णाकी नदियाँ मनुष्यको बहुत प्यारी और मनोहर लगती हैं । जो इनमें नहाकर सुख खोजते हैं, उन्हें बार-बार जन्म, मरण और बुढ़ापेके चक्करमें पड़ना पड़ता है ।

दान दो : १३ :

न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति बालाह वे न प्पसंसन्ति दानम् ।
धीरो च दानं अनुमोदमानो तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥[2]

कंजूस आदमी देवलोकमें नहीं जाते । मूर्ख लोग दानकी प्रशंसा नहीं करते । पण्डित लोग दानका अनुमोदन करते हैं । दानसे ही मनुष्य लोक-परलोकमें सुखी होता है ।

---

१. तण्हावग्गो २४।८ । २. लोकवग्गो १३।११

प्रमाद मत करो : १४ :

मा पमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं ।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥[1]

प्रमादमें मत फँसो। भोग-विलासमें मत फँसो। कामदेवके चक्करमें मत फँसो। प्रमादसे दूर रहकर ध्यानमें लगनेवाला व्यक्ति महान् सुखको प्राप्त करता है।

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं ।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥[2]

प्रमाद न करनेसे, जागरूक रहनेसे अमृतका पद मिलता है, निर्वाण मिलता है। प्रमाद करनेसे आदमी बे-मौत मरता है। अप्रमादी नहीं मरते, प्रमादी तो जीते हुए भी मरे हैं।

स्थविर, पण्डित, भिक्षु : १५ :

यम्हि सच्चं च धम्मो च अहिंसा संयमो दमो ।
स वे वन्तमलो धीरो सो थेरो ति पवुच्चति ॥[3]

जिसमें सत्य है, धर्म है, अहिंसा है, संयम है, इन्द्रियोंका दमन है, सचमुच उसीका मल नष्ट हुआ है। वही धीर है, वही स्थविर है।

न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितो ति पवुच्चति ॥[4]

बहुत बोलनेसे कोई पण्डित नहीं होता। पण्डित तो वह है,

---

१. अप्पमादवग्गो २।७। २. वही, २।१। ३. धम्मवग्गो १९।६। ४. वही, १९।३।

जो दूसरोंका कल्याण करता है, किसीसे वैर नहीं करता और किसीसे डरता नहीं ।

हत्थसंयतो पादसंयतो
वाचाय संयतो संयतुत्तमो ।
अज्झत्तरतो समाहितो
एको संतुसितो तमाहु भिक्खुं ॥[1]

जिसका हाथ संयममें है, पैर संयममें है, वाणी संयममें है, जो उत्तम संयमी है, जो अध्यातममें रत है, समाधियुक्त है, अकेला है, संतुष्ट है, उसे कहते हैं—भिक्षु ।

यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।
पहीनमानस्स अनासवस्स
देवा पि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥[2]

जिसकी इन्द्रियाँ इस तरह शान्त हो गयी हैं, जैसे सारथी द्वारा दमन किये गये घोड़े; जिसमें अभिमान नहीं रह गया, जिसके चित्तके मल नष्ट हो गये हैं, ऐसे अर्हतकी देवता भी चाह करते हैं ।

ब्राह्मण वह है : १६ :

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥[3]

ब्राह्मण न तो जटासे होता है, न गोत्रसे और न जन्मसे । जिसमें सत्य है, धर्म है और जो पवित्र है, वही ब्राह्मण है ।

---

१. भिक्खुवग्गो २५।३ । २. अर्हतवग्गो ७।५ । ३. ब्राह्मण-वग्गो २६।११ ।

किं ते जटाहि दुम्मेध ! किं ते अजिनसाटिया ।
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥[१]

अरे मूर्ख ! जटाओंसे क्या ? मृगचर्म पहननेसे क्या ? भीतर तो तेरा हृदय अन्धकारमय है, काला है, ऊपरसे क्या धोता है ?

अकिंचनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥[२]

जो अकिंचन है, किसी तरहका परिग्रह नहीं रखता, जो त्यागी है, उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वारि पोक्खरपत्ते व आरग्गे रिव सासपो ।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥[३]

कमलके पत्तेपर जिस तरह पानी अलिप्त रहता है या आरेकी नोकपर सरसोंका दाना, उसी तरह जो आदमी भोगोंसे अलिप्त रहता है, उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥[४]

चर या अचर किसी प्राणीको जो दण्ड नहीं देता, न किसीको मारता है, न किसीको मारनेकी प्रेरणा देता है, उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

●

---

१. ब्राह्मणवग्गो २६।१२। २. वही, २६।१४। ३. वही, २६।१९।
४. वही, २६।२३।

धर्म क्या कहता है ?

लेखक : श्रीकृष्णदत्त भट्ट

धर्म मानव-जीवनकी आधार-शिला है। मानवके विकासमें, उसकी उन्नतिमें धर्मका बहुत बड़ा स्थान है। भिन्न-भिन्न धर्मोंके ऊपरी आचारोंमें हमें अन्तर दिखाई पड़ता है अवश्य, पर उनके भीतर हम घुसकर देखें, तो पता चलेगा कि सभी धर्मोंके हृदयसे एक ही त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है : सत्य, प्रेम और करुणाकी।

हमारी 'धर्म क्या कहता है ?'—पुस्तक-मालामें भिन्न-भिन्न धर्मोंका सरल और रोचक परिचय दिया गया है—हर स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्धके लिए आवश्यक हितं, मनोहारि !

१. धर्मोंकी फुलवारी (सब धर्मोंकी सामान्य जानकारी)
२–४ वैदिक धर्म क्या कहता है ? (तीन भाग)
५. जैन धर्म क्या कहता है ?
६. बौद्ध धर्म क्या कहता है ?
७. पारसी धर्म क्या कहता है ?
८. यहूदी धर्म क्या कहता है ?
९. ताओ और कनफ्यूश धर्म क्या कहता है ?
१०. ईसाई धर्म क्या कहता है ?
११. इस्लाम धर्म क्या कहता है ?
१२. सिख धर्म क्या कहता है ?

हर पुस्तककी पृष्ठ-संख्या लगभग ८० और मूल्य ६० पैसे।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट :: वाराणसी–१





न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥

धम्मपदं १।५

वैर से वैर कभी नहीं मिटता । अवैरसे, मैत्रीसे ही वैर मिटता है—यही सनातन नियम है ।

—बुद्ध

